अध्याय–2
साहित्य का सर्वेक्षण

(ठक्कर, 2015) ने अवगत कराया है कि एक लम्बे अर्से से शिक्षकों का मूल्यांकन उनके द्वारा किये गये शिक्षण कार्य से किया जाता रहा है, और वो भी अवलोकन के आधार पर। शोधार्थी ने प्रश्न किये हैंः क्या इस प्रकार का मूल्यांकन विशिष्ट शिक्षा विषय के शिक्षकों के लिये उचित है? क्या इस प्रकार का मूल्यांकन वर्तमान की आवश्यकता की पूर्ति करता है? शोधार्थी ने पाया कि (1) विश्व के अनेक भागों में परम्परागत शिक्षक मूल्यांकन तरीके के बजाय शिक्षकों का मूल्यांकन उनके शिक्षण की प्रभावकारिता द्वारा किया जाने लगा है। (2) विशिष्ट शिक्षा के शिक्षकों का मूल्यांकन भी उनकी शिक्षण की प्रभावकारिता द्वारा विश्व के अनेक भागों में किया जाने लगा है। (3) भारत में शिक्षकों का मूल्यांकन उनके शिक्षण की प्रभावकारिता द्वारा किया जाना प्रचलित होना नहीं पाया गया है; चाहे वह शिक्षण सामान्य धारा के छात्रों का हो, या विशिष्ट शिक्षा के छात्रों का हो। शोधार्थी ने शिक्षण की प्रभावकारिता मापन द्वारा शिक्षकों के मूल्यांकन की संकल्पना व इस नई विधि के तौर–तरीकों का वर्णन किया है। शोधार्थी ने जोर देते हुए सुझाव दिया है कि भारत सहित विश्व में अविलम्ब ही इस नई पद्धति द्वारा शिक्षकों का मूल्यांकन करना लागू कर देना चाहिये और शिक्षक मूल्यांकन विषय पर और भी अधिक विश्वव्यापी (भारतवर्ष सहित) शोध करना चाहिये।

(ठक्कर व सिंह, 2015) ने निष्कर्ष रूप में पाया कि भारत में उच्च शिक्षा की दयनीय दशा है, जिसके शीघ्रतिशीघ्र दूर करने की आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में सबसे प्रमुख कमजोरी यह है कि यूनीर्वसिटी व कालेजों में शैक्षिक स्त्रोतों की दयनीय स्थिति है। ज्ञान के हस्तान्तरण क्षेत्र में भी आई.सी.टी. तथा ओपन एजूकेशनल रिसोर्सेस (ओ.ई.आर.) का प्रसार व महत्व दिन पर दिन बहुत तीव्र गति से बढ़ रहा है और उसके अनुसार भारत में प्रगति नगण्य है। शोधकर्ता ने भारत में ओ.ई.आर. के अधिक से अधिक उपयोगों के लिये हर स्तर की संस्थाऍं, विश्वविद्यालय, महाविद्यालय वगैरह को शीघ्रातिशीघ्र गहन प्रयत्न करने की अनुशंसा की है।

(ठक्कर, 2015) ने स्वच्छ भारतअभियान का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया है। शोधार्थी ने 'स्वच्छ भारत, हरित भारत' के आवाहन के गुणों–दोषों का विवेचन करने के उपरान्त पूर्वोक्त अभियान को भारत के इतिहास में पहला, अनूठा व प्रशंसनीय पाया है। शोधार्थी ने इस अभियान में नीहित व पायी गयी कमियों को दूर करने के उपाय सुझाये हैं।

(मन्त्र डॉट ओ.आर.जी. डॉट इन, 2015) में कहा गया है कि योग भारतीय चिरन्तर परम्परा की प्रायोगिक अभिव्यक्ति है। योग मूलतया आध्यात्मिक लक्ष्य या प्राप्तव्य की पूर्ति कराता है, किन्तु साथ ही योग अपने अनुपालन से शारीरिक से शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य एवं आनन्द, सामाजिकसमरसता एवं विश्व कल्याण के भाव को भी साधक में जगा देता है। ये यौगिक मूल्य भी है एवं ये यौगिक अभ्यास भी हैं।

(जॉनसन, 2015) ने चरित्र शिक्षा को वृहद पारस्परिक सुधार प्रक्रिया तथा स्कूल समुदाय को उसकी अतिउत्तम क्षमता तक विकसित होने की संस्कृति कहा है।

(शर्मा,2014) ने महाकाव्यीन उपवास और उथले उपनेत्र– 'भ्रष्टाचार विरोधी भारत' अभियान, इसकी आलोचना तथा गांधी पुनर्निमाण विषयक शोध किया है। शोध में बताया गया है कि भारत में सरकार में व्याप्त भ्रष्टाचार के विरोध में 'इण्डिया अगेन्स्ट करपशन' (आई.ए.सी.) नामक समूह द्वारा चलाये गये अभियान को देखा गया। इसके सन्दर्भ में गांधी की भूख हड़ताल द्वारा प्रयुक्त विरोध करने की युक्ति का इस्तेमाल किये जाने की आलोचना की गयी। शोधकर्ता ने विवेचना की है कि ऐसी आलोचनाओं ने गांधी को और गांधीवाद को एकविमीय, अस्थिभूत व व्यापकरूप से अनोखे विषयरूप में पुनर्स्थापित किया है। और ऐसा करने में उन लोगों ने विरोधों, प्रयोगों तथा उभयवृत्ततिता; जिनसे गांधी का जीवन पहचाना जाता है; को छिपाया है। वास्तविक गांधी को पुनर्उत्पादित करने को या संरक्षण करने की अभिलाषा को दबा देने की आवश्यकता है ताकि उनके आचरणों को आज सामाजिक आन्दोलनों द्वारा नयेपन से लाया जा सके और उत्साहपूर्ण बनाया जा सके। शोधार्थी ने शोधपत्र में की–व्र्ड्स लिखे हैं, एब्सट्रेक्ट दिया है तथा शोधपत्र में चर्चा अग्रवर्णित शीषर्कों के अन्तर्गत की हैः परिचय, भ्रष्टाचार विरोधी सत्याग्रह व इसकी अलोचना, 'युगीन' व्रत, पवित्रता व अपवित्रता, तथा वास्तविकता की स्थिरता को अस्थिर बनाना।शोधपत्र में न तो निष्कर्ष, न भावीशोध हेतु सुझाव और न ही संदर्भ सूची दी हुई है। शोधार्थी ने ताजी स्थिति व ज्वलन्त समस्या को विषय बनाया है। यह प्रशंसनीय है। शोधार्थी ने सरल, शिष्ट, परिचित तथा स्पष्ट शब्दावली के प्रयोग द्वारा साफ–सुथरी तथा छोटे–छोटे सारगर्भित वाक्यों वाली भाषा में अपना शोधकार्य प्रस्तुत किया है। शोधार्थी ने विचारों के प्रस्तुतीकरण में तारतम्यता, संगतता, समरसता तथा तार्कितता बनाये रखी है।

(कुमार, 2014) ने महात्मा गांधी के सत्याग्रह में मानव व अमानव के सम्बन्ध में शोध किया और पाया कि पशुओं के प्रति आनुभविक, संकल्पनात्मक तथा भाषिक सामर्थ्य रखने वालों में महात्मा गांधी के समतुल्य अन्य कोई नहीं था। गांधी ज्यादा हवाई यात्राओं के भी विरोधी थे। शोधार्थी ने अपने शोधपत्र को परिचय (लेकिन शीर्षक नहीं दिया गया है), जानवर का संसार से रिश्ता,

अनुभववाद की सीमा, हल तथा अनौचित्यपूर्ण दयाभाव नामक पाँच शीर्षकों में विभाजित किया है जबकि टाइम्स न्यू रोमन लिपि के 10 प्वाईन्ट साइज में शोधपत्र 21 पृष्ठों का है। शोधपत्र की भाषा कठिन है। शोधपत्र में विचारों का प्रवाह भी संगठित नहीं है। शोधपत्र में नीरसता साफ–साफ झलकती है। उद्देश्य भी स्पष्ट नहीं है। शोध से क्या फायदा मिलेगा यह भी शोधार्थी ने व्यक्तनहीं किया है। निष्कर्ष, सारांश और एब्सट्रेक्ट भी शोधपत्र में नहीं दिये हैं। कोटेशन भी लम्बे–लम्बे दिये हैं। शोधपत्र में सन्दर्भों की सूची भी नहीं दी गयी है। कुल मिलाकर शोधपत्र में वो विशेषताएँ नहीं हैं जो कि सैद्यान्तिक रूप से एक अनुसन्धान पत्रक में होनी चाहिये।

(डेविड, 2014) ने सीखने के परम्परागत प्रयोगाश्रित (एम्पिरिकल) या तर्क आश्रित तरीके और दार्शनिक व्याख्यात्मक तरीके का तुलनात्मक अध्ययन किया है। शोधार्थी ने ज्ञान प्राप्ति के दार्शनिक व्याख्यात्मक तरीके को प्रयोगाश्रित/ तर्कश्रित तरीके की तुलना में श्रेष्ठ बताया है। यह भी कहा है कि यह दार्शनिक व्याख्यात्मक तरीका पूर्वदिशायी देशों तथा आधुनिकतापूर्ण क्रिस्चियन विचारों के परिदृश्य में पाया जाता था और वर्तमान के आधुनिक–उदारवादी पश्चिमी परिदृश्य में नहीं पाया जाता है क्योंकि इसमें प्रस्तुतीकरण, स्वीकृति, अस्वीकृति व एकीकरण तत्वों का आभाव होता है।

(ठक्कर, 2014) ने अध्यापक–प्रशिक्षणार्थीयों को पर्यावरणीय शिक्षा क्यों और कैसे दिये जाने के विषय पर शोध कार्य किया है। शोधार्थी ने पाया है कि अब तक जो भी शिक्षा पर्यावरण सम्बन्धी दी जा रही है वो जरूरत के मापदण्ड पर खरी नहीं उतरती है। शोधार्थी ने बताया है कि आवश्यकता है पाठ्यक्रम में पर्यावरण विषयक सामग्री डालने की तथा आवश्यकता है उस नई शिक्षण विधि(यों) को अपनाये जाने की जिसके द्वारा पर्यावरण सम्बन्धी शिक्षा दी जाये। साक्ष्य, शिक्षण प्रभावकारिता मूल्यांकन तथा सिस्टम–प्रतिबद्ध आधारित पर्यावरण शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता है। शिक्षक–प्रशिक्षणार्थियों को इस प्रकार की शिक्षा देने के लिये विधिवत प्रशिक्षण दिये जाने की आवश्यकता है। शिक्षक–प्रशिक्षणार्थी ऐसे शिक्षक बनें जो अपने–अपने स्कूलों में पर्यावरण संरक्षा, संपोषण व संरक्षण के लिये विभिन्न तरह के कार्य करें और विद्यार्थियों से करवायें।

(बॉग व अन्य, 2014) ने इस शोध कार्य में साउथ कोरिया में प्रवृत्त एक्शन लर्निंग के गुण–दोष का अध्ययन करके एक्शन लर्निंग का मॉडल सुझाया गया है। एक्शन लर्निंग मॉडल को डिजायन करने की चरणवार विधि बतायी है और निर्णयन प्रक्रिया (डिसि्श्न–मेकिंग प्रोसेस) को भी साथ–साथ बताया है।

(मेगेन, 2014) ने शिक्षण व अधिगम के आधुनिक तरीके का अध्ययन शिक्षा के दर्शनशास्त्र के सन्दर्भ में किया है। शोधार्थी का कथन है कि प्रचीन समय से दर्शनशास्त्रीयों द्वारा शिक्षण सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार किया जाता रहा है। कुछ ने औपचारिक शिक्षण व अधिगम सम्बन्धी संशयों के पक्ष में और कुछ ने विरोध में विचार व्यक्त किये हैं। शोधार्थी ने प्लेटो, अगस्तीन, सेन्ट थॉमस, एक्वोनस, सोरेन क्रिकगाई, मार्टिन हेडेगर, लडविग, रिटेन्जसटीन के विचारों का इस सम्बन्ध में अध्ययन किया है।

(यूसुफ, 2014) ने शोध के द्वारा इस बात का खण्डन किया है कि एकेश्वरवादी धर्म, यथा इस्लाम, और हिंसा में अवश्य ही सीधा सम्बन्ध होता है। शोधार्थी कहते है कि इस्लाम धर्म और हिंसा में आकस्मिक सम्बन्ध होता है; न कि सुनिश्चित सम्बन्ध। उक्त विषयागत विश्लेषणात्मक अध्ययन में शोधार्थी ने अहिंसा हेतु इस्लामी शिक्षा का अध्ययन किया है; विशेषतौर से इस बात के मद्दे नजर कि मुस्लिम सुधारवादी इस्लामिक शिक्षा के द्वारा किस उद्देश्य की प्राप्ति का उद्देश्य रखते हैं।

(ली व अन्य, 2014) ने एक्शन लर्निंग का उच्च शिक्षा में बढ़ते महत्व व प्रभाव को देखते हुए एक्शन लर्निंग के सिद्यान्तों के आधार पर व्यक्ति के विकास का प्रोग्राम सुझाया है। इस बनायें गये प्रोग्राम का उद्देश्य विश्वविद्यालयों में मैनेजमेन्ट के नवाचार पर आधारित नये नियुक्त/कार्यरत वैज्ञानिकों तथा इन्जीनियरों के ज्ञान, स्किल तथा विश्वासस्तर वृद्धि करना है। इसमें एक महत्वपूर्ण फायदा, वैज्ञानिकों आदि में समालोचनात्मक अध्ययन व चिन्तन शक्ति में वृद्धि करना भी है। इस प्रोग्राम से चुनौतियों को सफलतापूर्वक जीतने की शक्ति में भी इजाफा होना बताया गया है।

(सेन व अन्य, 2014) की पुस्तक का उद्देश्य भारत में हिन्दू–मुस्लिम धर्म के अनुयायियों के दृष्टिकोणों, सोच, नागरिकता भाव तथा उनमें एकता का ऐतिहासिक व समसामयिक तथ्यात्मक अध्ययन करके उनके मध्य झगड़ों को खत्म करने, उनमें नैतिकता का समावेश करने, उन्हें अच्छा नागरिक बनाने, तथा उनमें एकता स्थापित करने के सुझाव देना है। लेखक ने विषय वस्तु को बोधगम्य व सजीव बनाने हेतु मुम्बई में हुए हिन्दू–मुस्लिम धर्मों के अनुयायियों के मध्य हुए हिंसात्मक झगड़े का उदाहरण प्रस्तुत किया है। लेखक ने इस झगड़े के सम्बन्ध में दोनों धर्मों के मध्यवर्गीय व निम्नवर्गीय महिलाओं व पुरूषों से साक्षात्कार कर समंकों का संग्रहण करके विवेचना भी की है। लेखक ने दोनों धर्मों के लोगों की वेशभूषा के प्रति संवेदनाओं की व्याख्या की है और संस्कृति संक्रमण व आपसी सद्भाव बनाने व विकसित करने को प्रोत्साहन दिया है तथा कुछ मुख्य बातों पर ध्यान देने व समझने की समझाईश दी है। पूरी पुस्तक में

लेखक ने नैतिक परिपक्वता, एक–दूसरे की संस्कृति को समझने की समझाईश, तथा संचार बनाने हेतु जोर दिया है। वास्तव में यह पुस्तक बहुत उपयोगी है: झगड़ों के उत्पन्न न हो सकने की स्थिति उत्पन्नकरने सम्बन्धी नीतियाँ बनाने हेतु तथा एक–दूसरे को समझने का व्यवहार उत्पन्न करने हेतु।

(रिन्ज, 2013) ने चर्चा की है कि शिक्षा के सम्बन्ध में बच्चों को शिक्षा देना समाज का अधिकार कहा गया है। शिक्षा का स्वरूप योगात्मक हो सकता है और रूपान्तरणस्वरूप भी हो सकता है। प्रगतिवादी या उदारवादी शिक्षा के रूपान्तरणस्वरूप पहलू को प्राथमिकता देते हैं। लेकिन रूपान्तरणस्वरूपीय शिक्षा के सम्बन्ध में प्रश्न उठता है कि क्या इससे अधिगमकर्ता के अधिकार का उल्लघंन नहीं होता है, भले ही शिक्षक की मंशा कितनी ही अच्छी क्यों न हो या शिक्षा का परिणाम कितना भी हितकर क्यों न हो? शोधार्थी ने पाया कि उक्त उल्लंघन नहीं होता है। शोधार्थी ने अपने मत के समर्थन में कहा है कि सिखाने वाले के इरादे तथा सीखने वाले कीसमझ के मध्य अन्तर होता है, नैतिक स्वतन्त्रता के पीछे मूल्यों की धारणा महत्वपूर्ण होती है, व्यक्ति के प्रत्यक्षण तथा अनुक्रियाओं के सम्बन्ध में पूर्वकथनीयता नहीं होती है तथा सीखने वाले के पास सीख देने वाले के मूल्यों की आलोचना करने की स्वतन्त्रता शेष रहती है।

(खन्दूरी, 2012) ने गांधी के उपयोग की वस्तुओं, गांधी की हत्या से रक्तमय मिट्टी, और गांधी की लोकप्रियता आदि के आधार पर दिव्यता, बाजार तन्त्र, व संवेदी वास्तविकता के अध्ययन के सन्दर्भ में यह बताया है कि निम्नवर्ग के समाज के व्यक्ति गांधी के प्रति किस प्रकार के भाव रखते हैं। पहले तो शोधार्थी ने यह बता दिया कि गांधी एक महान पुरूष थे। वह साधारण जीवन व उच्च कर्म व विचार के पालक थे। वह दिव्य शक्ति थे, उनमें जादुई शक्ति थी। यह भी सूचित किया गया है कि विशेषकर निम्न वर्ग के लोग दिल–दिमाग–शारीरिक इन्द्रियों से उनके प्रति प्रेम, श्रध्दा, आदर, समर्पण का भाव रखते थे। किन्तु शोधार्थी ने उनके शरीर की भस्म तथा उस स्थान की मिट्टी जहाँ उनकी हत्या हुई थी, तथा उनके द्वारा प्रयोग में लायी गयी वस्तुयें (चरखा, चश्मा, टोपी, चमड़े की चप्पल, घड़ी, पेन आदि) के माध्यम से यह बताया गया है कि उनकी वस्तुओं को तथा उनकी लोकप्रियता को पूँजीवादियों व व्यवसायियों के लोगों ने स्वार्थ के भाव से लोगों से धन कमाने का साधन बनाकर गांधी के प्रति झूठा प्रेम जताया है और यहाँ तक कि गांधी के नाम व चित्र आदि का उपयोग उन कामों के लिये किया जिन्हे गांधी नहीं करते थे। शोधार्थी ने शेगांव में उनके आश्रम में वेद मेहता नामक विदेशी पुरूष के अवलोकन, सिगरेट केस और कार्ड होल्डर में गांधी का जिक्र, आटोग्राफ की बिक्री, हत्या के स्थान की रजकण की बिक्री, अस्थिभस्म की बिक्री, गांधी के प्रयोग की वस्तुओं की चोरी व नीलामी, एपल कम्प्यूटर और उच्च वर्ग हेतु उच्च कीमत का मोन्टब्लैन्क पेन, उनके हस्तलेख

आदि के जरिये जगत में व्याप्त व्यवहार के तथ्यों का उल्लेख किया है। शोधार्थी ने अपनी बात को स्पष्ट करने के भाव से स्पष्टीकरण दिये हैं और 30 से अधिक सन्दर्भों की सूची प्रस्तुत की है। यह शोध विद्यार्थियों, शिक्षकों, शोधार्थियों तथा समाज के लोगों के लिये लाभदायक है।

(ग्रेडोवस्की, 2012) ने बताया है कि नार्वेनियन डॉयलॉग शिक्षणकला के प्रतिनिधि हन्स स्केरवहिम और लार्स लवली द्वारा विकसित डॉयलॉग को किस प्रकार से उच्च शिक्षा क्षेत्र में प्रयोग करना चाहिये। शोधकर्ता का मानना है कि डॉयलॉग शिक्षक–कला द्वारा अधिगम कर्ता में दृश्य तथा अदृश्य शक्तियाँ विकसित होती हैं। इससे अधिगमकर्ता न केवल जीविकोपार्जन की कला व ज्ञान सीखता है, बल्कि प्रजातान्त्रिक मूल्यों का सक्रिय कर्ता बनता है, तथा सामाजिक व लैगिंक भेद की बुराईयों से लड़ने की समझ व शक्ति ग्रहण करता है। डॉयलॉग शिक्षण कला का उपयोग औपचारिक कक्षा–कक्ष में, सभाओं में, शिक्षक व अधिगमकर्ता के मध्य बातचीत में तथा बच्चे व अभिभावक के मध्य बातचीत में इत्यादि अन्य सभी स्थितियों में, जिसमें व्यक्ति को उसके मस्तिष्क की बात जाहिर करना हो, किया जा सकता है। शैक्षणिक निर्देशन में डॉयलॉग द्वारा अधिगमकर्ता/छात्र, टेक्स्ट बुक में निहित सूचना व ज्ञान प्रदायक सामग्री के अलावा भी, अपने वृहद दृष्टिकोण व विचारों को दूसरे के सम्मुख रख सकता है। शोधकर्ता ने स्पष्ट किया है कि यह डॉयलॉग पद्धति गिराउक्स के द्वारा प्रस्तावित डॉयलॉग पद्धति से भिन्न होना चाहिये। डॉयलॉग विधि ऐसी होनी चाहिये जिसमें एक ही समय में अनेक बयानों/ वर्णनों /कथनों को स्थान मिल सके।

(जोशी, 2012)शोधार्थी ने महात्मा गांधी की ट्रस्टीशिप के दृष्टिकोण से नवउदारतावाद की चुनौती विषय पर अध्ययन किया। शोधकर्ता ने वर्तमान की हावी नवउदारता तथा मानव पूँजी बनाने की शिक्षा नीति का आलोचनात्मक वर्णन किया है। शोधकर्ता ने प्रभुत्ववादी नवउदारतावादव दोषयुक्त अवधारणाओं की अलोचना की है। शोधकर्ता ने गांधी की अर्थनीति, जिसमें ग्रीड (तृष्णा, लालसा, लोभ) के बजाय नीड (आवश्यकता) को प्राथमिकता दी गयी है, को दृष्टि में रखते हुए शिक्षा देने की अनुशंसा की है। शोधार्थी ने नवउदारतावाद द्वारा वैश्वीकरण, बाजारीकरण पर जोर दिये जाने की बात सारांश में सुस्पष्ट भाषा व सरल भाषा में पहले अच्छी तरह समझाया है। तत्पश्चात कनाडा में नवउदारतावाद के फैलाव के कारण शिक्षा क्षेत्र में पड़े दुष्प्रभावों का यथोचित संक्षिप्त व स्पष्ट उल्लेख तथ्यात्मक रूप से व्यक्त किया है। इस वास्ते शोधार्थी ने उपयुक्त, पर्याप्त व छोटे–छोटे उदाहरण प्रस्तुत किये हैं जिससे शोधपत्र में सजीवता व स्पष्टता आ गयी है। तत्पश्चात कनाडा में नवउदारतावाद के विरूद्ध बौद्धिक, चिन्तक, मानवीय मूल्यों को समझने वाले व्यक्तियों द्वारा किये गये विरोधों का समुचित वर्णन किया है। इससे शोध विषय एक आवश्यक पक्ष का निरूपण हुआ है और विवेचन करने में सहायता मिली

है। तत्पश्चात शोधार्थी ने गांधी के सिद्धान्त और अर्थशास्त्र का वृहद विवरण, संक्षिप्त उदाहरणों को देते हुए व गुणों–दोषों पर तर्कसंगत विवरण देते हुए, विवेचना में लिखा है कि वर्तमान में नवउदारतावाद आधारित प्रयुक्त किये जा रहे आर्थिक मॉडल में क्या दोष हैं व क्या हानियाँ है; विशेषतः मानव–मानवीयता, सांस्कृतिक–परिस्तिथिकी के सन्दर्भ में शोधार्थी ने गहन विचार व्यक्त किये हैं कि दिये गये नवउदारतावाद समर्थित आर्थिक विकास के मॉडल के दृष्टिगत शिक्षा क्षेत्र में क्या–क्या बदलाव के विकल्प नजर आते हैं। अन्त में शोधार्थी ने निष्कर्ष रूप में कहा है कि वर्तमान में व्याप्त भोगवाद और बाजारवाद आर्थिक क्षेत्र में और शिक्षा क्षेत्र में, दोनों में, हावी होने से विद्यार्थी कन्सयूमर हो गये और शिक्षक व स्कूल (वस्तु वितरक) हो गये हैं; अर्थात्, विद्यार्थियों के सम्बन्ध शिक्षकों व स्कूल से बिलकुल बदल गये हैं। ऐसी स्थिति वाँछित नहीं है। लेकिन फिर करें क्या? शोधार्थी का कहना है कि– शिक्षक वर्तमान स्थिति में सुधार के लिये रातों–रात क्रान्ति नहीं ला सकते हैं, किन्तु शिक्षकों को अपने कार्यों के द्वारा ऐसे बीज बोते चलते रहना चाहिये जिससे एक–न–एक दिन बदलाव आने की संभावना बनी रहे और अर्थशास्त्र व शिक्षा क्षेत्रों के बीच औचित्यपूर्ण सम्बन्ध स्थापित होने की संभावना बनी रह सके।

(ठक्कर, 2012) ने अपने शोध में पायाः–(1) विश्व में धार्मिक, नैतिक, चरित्र शिक्षा के फलों का जिक्र और अपेक्षाओं का व्यक्त होना तो पाया गया है किन्तु उन फलों की उत्पत्ति करने वाली वस्तु/शक्ति/क्रियाओं के बारे में जिक्र नहीं है; यह अज्ञानता है। (2) विश्वस्तर पर एक नई व निष्पक्ष संस्था का सृजन हो जो 'सर्वधर्म–समभाव' के उत्पन्न करने व बनाये रखने का उत्तरदायित्व निभाये। (3) योग शिक्षा शैशवकाल से शुरु करें और क्रियाओं के अभ्यास द्वारा दी जानी चाहिये। (4) शारीरिक–सह–बौद्धिक–सह–आध्यात्मिक सायुज्य शिक्षा देना चाहिये। यह शिक्षा क्रियाओं व प्रयोगों आधारित हो; उक्त क्रियायें/प्रयोग बच्चों के उक्त परिवेश (व्यक्ति .. इत्यादि) में व उन पर आधारित हो; उक्त क्रियायें/प्रयोग अन्तर–विषयक ज्ञानवर्धन करे; उक्त क्रियाओं/प्रयोगों का चयन स्वयं शिक्षक करे और उन क्रियाओं/प्रयोंगों में निहित व्यवहारिक जीवन में काम में आने वाली वास्तविक स्थितियों को उत्पन्न कर अनेक उक्त विषयों (प्राकृतिक संसाधन ... इत्यादि) मेंनिहित सार्थक ज्ञान का अभ्यास कराया जाये व प्रयोगों का अभ्यास करके बच्चा 'मास्टर' (प्रवीण) बने; 'मास्टर' बनाने का पूर्ण उत्तरदायी शिक्षक हो; समय–समय पर शिक्षक व उसकी उपलब्धि (बच्चे में मात्रात्मक व गुणात्मक व्यवहार परिवर्तन) का मूल्यांकन हो व तद्नुसार सुधारात्मक उपाय किये जायें। (5) शिक्षा पद्धति हेतु उचित तरह से योजना बनाने तथा क्रियान्वित करने की आवश्यकता है। (6) संवाद उपागम का उपयोग शिक्षा अनुदेशन व शिक्षा प्रबन्धन दोनों क्षेत्रों में किया जाना चाहिये। (7) प्राथमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में आमूल परिवर्तन करने चाहिये।

(ठक्कर व अन्य, 2012) ने व्यक्त किया है कि शिक्षा का वास्तविक अर्थ क्या है; वर्तमान शिक्षा प्रणाली में किन बदलाव की आवश्यकता है; तथा रचनात्मकता, एकता तथा संधारणीयता हेतु शिक्षा में बदलाव कैसे लाया जाये।

(धारेश्वर, 2012) ने 'फ्रेमिंग दि प्रीडिकामेन्ट ऑफ इण्डियन थॉट– गांधी', गीता तथा नैतिक कार्य, विषय पर शोध की है। शोधकर्ता ने गांधी रचित 'हिन्द स्वराज' पुस्तक में वर्णित भारतीय दुर्दशा का उल्लेख किया है। इसको समझाने के लिये शोधार्थी ने वास्तविक जीवन में घटित होने वाले तीन भिन्न उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। शोधार्थी ने सारांश में यह भी बताया कि इस दुर्दशा की स्थिति का हल गीता में गांधी ने कैसे पाया।

(पासी. व अन्य, 2012) ने शिक्षा में समग्रता दृष्टिकोण की छतरी में ही कार्य करने के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए शोधार्थियों ने शैक्षिक शोध कार्य की दुर्दशा की स्थिति को दूर करने के लिहाज से शैक्षिक शोध क्षेत्र में अनुप्रयोग किये जाने हेतु संवाद व पुनर्संवाद पद्दत्ति ईजात की है।

(बुगान्जा, 2012) ने यह बताने का प्रयास किया है कि शिक्षा पर विचार करते समय दर्शनशास्त्र और साहित्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। शोधकर्ता कहते हैं कि सभी संस्कृतियों का साहित्य के माध्यम से नैतिक पक्ष स्पष्ट होता है। शोधकर्ता ने बताया है कि मैक्स शेलर, करोल, वोजटयाला, लुईस पारेसन, फर्नान्डो सलमेरो इत्यादि के शोध प्रबन्धों का नैतिक दर्शन पर चर्चा करते समय बारम्बार हवाला दिया जाना उचित है। नैतिक दर्शन से चरित्र निर्माण होगा, प्रेरणा बल मिलेगा और नैतिक दर्शन के मुताबिक मानवीय मूल्यों की स्थापना करने में सहायता करने वाले प्रतिमानों का विकास हो सकेगा।

(ब्लेंचॉट, 2012) ने कहा है कि महात्मा गांधी को ऐसीसी के सेन्ट फ्रान्सिस, मोसेस और इण्डियन क्राइस्ट के समतुल्य माना गया है। शोध में इण्डोनेशिया के बाली स्थान पर ग्लोबलायीजेशन के प्रभाव के बारे में भी गांधी के विचारों की प्रासंगिकता का अध्ययन किया है और अनुशंसा की गयी है कि वर्तमान दशा में शिक्षा क्षेत्र में सामाजिक न्याय की दृष्टि से बनाये गये पाठ्यक्रम की आवश्यकता है। शोध अति संक्षिप्त है, किन्तु शोधार्थी ने सरल, शिष्ट, परिचित तथा स्पष्ट शब्दावली का प्रयोग करके शोध पत्र अति प्रभावशाली बनाया है। सभी प्रकरणों को न्यायसंगत अनुपात व बल के साथ प्रस्तुत किया है। लेखन–शैली व प्रस्तुति प्रशंसनीय है। शोध का विषय भी वर्तमान वक्त / हालातों के मद्दे नजर बहुत उपयोगी है। गांधी के बारे में गैर–भारतीय द्वारा श्रेष्ट मूल्यांकन पाया गया है।

(हकसर, 2012) ने वॉयलेन्स इन ए स्पिरिट ऑफ लवः गांधी एण्ड द लिमिट्स ऑफ नॉनवॉयलेन्स विषय पर शोध किया है। महात्मा गांधी को सत्य और अहिंसा का पुजारी माना जाता है। किन्तु शोधार्थी ने प्रश्न किया है कि वास्तव में गांधी द्वारा प्रयुक्त अहिंसा का अर्थ क्या है। यह प्रश्न शोध हेतु अनूठा है। इस प्रश्न की शोध में अनेकों भ्रन्तियॉ दूर होगी। समाज लाभान्वित होगा और शिक्षाकार्य भी लाभान्वित होगा। शोधार्थी ने कल्पना की है कि गांधी की अहिंसा की संकल्पना, हिंसा की आवश्यकता की स्थिति में, क्या रूप लेती है। शोधार्थी ने गांधी द्वारा अहिंसा–हिंसा के संदर्भ में प्रयुक्त व्यवहारों में से कुछ स्थितियों का आलोचनात्मक वर्णन किया है। शोधार्थी ने पाया है कि गांधी बाहरी हिंसा से सहमत थे यदि हिंसा दी हुई स्थिति में आवश्यक ही हो। किन्तु गांधी अहिंसा का आवश्यकतानुसार अनुपालन करने से असहमत थे। शोधार्थी ने शोध में उत्तम विश्लेषण किया और यह पाया कि वास्तव में गांधी के हिंसा–अहिंसा के प्रति दो सिद्धान्त थे। और ये सिद्धान्त बाहरी–हिंसा और आन्तरिक–हिंसा पर आधारित थे। बाहरी–हिंसा का उपयोग प्रायः आवश्यक हो जाता है किन्तु इसका उपयोग दया के साथ किया जाना चाहिये। अन्य किसी हालात में बाहरी–हिंसा का उपयोग अनौचित्यपूर्ण है। बाहरी हिंसा या शारीरिक–हिंसा से आशय है, पीड़ित को क्षति पहुँचाना। आन्तरिक–हिंसा से आशय है, दूसरों के प्रति घृणा, द्वेष भावना, दुष्ट भावना रखना। अहिंसा मस्तिष्क की प्रवृत्ति है और उसके अनुसार कार्य करना है। निःसंदेह शाक–सब्जी का जीवन लेना उसका जीवन हरण है। किन्तु ये क्षम्य है। गांधी के अनुसार, हिंसा हमेशा पाप होती है, हिंसा कभी भी औचित्यपूर्ण नहीं होती है चाहे इसके कितने भी अच्छे परिणाम क्यों न हों। यह भी पाया गया कि किसी व्यक्ति को क्षति पहुँचाना हमेशा ही अनौचित्यपूर्ण है, जबतक कि ऐसा करना क्षतिग्रस्त व्यक्ति के हित में न हो या उसकी सहमति से न की गयी हो। गांधी का ये भी मत है कि विवशतावश यदि बाहरी–हिंसा करना ही पड़े, तो इसका कम–से–कम उपयोग करना चाहिये और इसकी उपज दयारूपी भावना से होनी चाहिये, इसके उपयोग के पीछे निग्रह और विमोह होना चाहिये। गांधी हत्या करने को औचित्यपूर्ण बताते थे किन्तु हिंसा को नहीं, पितृसुलभ स्थिति में कभी–कभी हत्या करना भी औचित्यपूर्ण होती है। गांधी दया–मृत्यु से सहमत थे क्योंकि इसकी पृष्ठभूमि में बुरी भावना नहीं होती है, इसको दया–भाव से किया जाता है और इससे पीड़ित को कोई क्षति नहीं होती। गांधी उस व्यक्ति को अहिंसक मानते थे जोकि विमोही और विमुख हो। गांधी का मानना था कि हिंसात्मक भावनाओं को दया, अनुकम्पा जैसी अहिंसक भावनाओं में परिवर्तित करना चाहिये। उनका मानना था कि हमें अपने दुश्मन से भी प्रेम होना चाहिये। दुष्ट से प्रेम करो, न कि उसकी दुष्टता से। लेकिन गांधी दुष्ट और भले के प्रति समान भाव नहीं रखते थे। भले व्यक्ति आदर के पात्र होते है औरदुष्ट दया के (न कि घृणा के)। गांधी दुष्टों से घृणा नहीं करते थे, बल्कि दुष्टों के साथ अहिंसक असहयोग करते थे। तमाम विश्लेषण के पश्चात्

शोधार्थी द्वारा निष्कर्ष निकाला गया कि गांधी अहिंसा के पक्षधर थे, किन्तु कुछ दी हुई दशाओं में हत्या/ हिंसा को अनुमति देते थे और क्षम्य समझते थे। यह निष्कर्ष विवेकपूर्ण है और शोधार्थयों के लिये ही नहीं बल्कि शिक्षार्थियों, शिक्षकों व समाज के लिये भी लाभदायक है।

(सुजाता, 2012) ने गांधी से, गांधी के व्यक्तित्व से, गांधी के कार्यों से, गांधी के विचारों से तथा गांधी की जीवनचर्या आदि से बहुत अधिक प्रभावित होने के बाद 'गांधी की नैतिकता' पुस्तक की रचना की। उन्होने गांधी की जीवन–शैली और जीवन–दर्शन को जनसाधारण को सामान्य व्यक्ति की बोलचाल की भाषा में कराने के उद्देश्य से इस पुस्तक की रचना की है। इस पुस्तक की रचना में लेखिका ने बापूकृत बालपोथी, महात्मा गांधी की दृष्टि में स्त्री, महात्मा गांधी की दृष्टि में आध्यात्म और महात्मा गांधी की दृष्टि में नैतिकता को आधार संदर्थग्रन्थ बनाया है। यह पुस्तक 180 पृष्ठ की है। इस पुस्तक में 42 अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में लेखिका ने गांधी की एक ही विशिष्ट गुण के बारे में विचारों, तथ्यों, साहित्य आदि के मद्देनजर विश्लेषण प्रस्तुत किया है। ये अध्याय/विशेषतायें अग्रवर्णित हैंः– गांधी की नैतिकता, सत्य, अहिंसा, प्रेम, सद्आचरण, आत्मशुद्धि, मनुष्यता, कर्तव्य, सेवा, अस्पृश्यता, अर्थनीति, समभाव, नम्रता, सत्याग्रह, विश्वास, अज्ञानता, मन, निर्भयता, क्रोध, आश्रम के नियम, ब्रह्मचर्य, नीतिमार्ग, स्वयं गांधी, मैत्री, स्वतन्त्रता, महापुरूष, कृतज्ञता, हिन्दू–मुस्लिम एकता, उत्साह, पाप, कला व सौन्दर्य, सच्ची शिक्षा, संयम, आत्मविश्वास, त्याग, प्रतिज्ञा, पुस्तक, भारत, खादी, विविध, निरामिष और विवाह हैं। लेखिका का प्रयास प्रशंसनीयहै। लेखिका ने इस पुस्तक को गांधी के सम्बन्ध एक महाग्रन्थ बना दिया है। यह पुस्तक अच्छी व सरल भाषा शैली में है। यह पुस्तक पढ़ने में रोचक है। इस पुस्तक की विषय–सामग्री संगठित है। यह पुस्तक छोटे–बड़े सभी के लिये बहुत अधिक लाभदायक है।

(सुजाता, 2012) ने पाया कि वर्तमान में नारी–पुरूष के भेद को मन में रखकर लोग जीते हैं। संघर्ष की तथा अत्याचार की स्थिति रहती है। इस सन्दर्भ में लिखी गयी यह पुस्तक 'बापू और स्त्री' बहुत उपयोगी है। आज जो नारी–पुरूष के मध्य भेदभाव की स्थिति है, विशेषतः भारत के ग्रामीण व अविकसित क्षेत्रों में, उससे गांधी करीब सौ वर्षों पूर्व परिचित थे। इस पुस्तक में स्त्री सम्बन्धित विषय–वस्तु को इक्कीस अध्याओं में लिखा गया है। पुस्तक में 112 पृष्ठ हैं। इस पुस्तक में बहुत से विषय ऐसे हैं जो पुरूष वर्ग द्वारा स्त्री के शोषण को दर्शाते हैं। यह बात तथ्यात्मक है। लेकिन ऐसी बातों को खत्म करने की पहल पुरूष नहीं करते हैं। कुछ ऐसे विषय भी पुस्तक में हैं जिनका सम्बन्ध ग्रामीण, अनपढ़ व पिछड़े लोगों के अलावा नगरीय, पढ़े–लिखे तथा सभ्य समाज से भी है और सभी को गांधी के विचारों को समझने और तद्नुरूप आचरण करना चाहिये। ऐसे विषयों के उदाहरण हैंः– बलात्कार, स्त्री–स्वाबलंबन, अबला नहीं सबला

आदि। पुस्तक में विचार उत्तम हैं किन्तु ज्यादा नहीं पढ़े–लिखे लोगों की समझ के हिसाब से भाषा थोड़ी कठिन है। विषय–वस्तु का संगठन वास्तव में इस पुस्तक की खास विशेषता है।

(शास्त्री, 2011)नें गीता का नीतिशास्त्र नामक पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक में गीता में अध्यात्मशास्त्र संबंधित बातों का जो जिक्र है, उसको शामिल नहीं किया है।केवल नीति शास्त्र के पहलुओं का अध्ययन, विवेचन व निष्कर्ष इस पुस्तक में शास्त्री जी ने लिखा है।
उनका कहना है कि गीता ब्रह्मविद्या ही नहीं, योग शास्त्र भी है; गीता कर्तव्य व अकर्तव्य का उपदेश देती है;और इस प्रकार गीता ब्रह्मविद्या व नीति शास्त्र भी है। अतः लेखक ने अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए शंकराचार्य, स्वामी विवेकानंद, लोकमान्य तिलक, महर्षि अरविंद व महात्मा गांधी के नीतिशास्त्र सम्बन्धी विचारों को आधार बनाया है क्योंकि गीता के मूल संदेश के बारे में इन सब मनीषियों की अलग–अलग अवधारणाएं हैं। लेखक ने अपनी बात के समर्थन में राजगोपालाचार्य के कथन का उल्लेख किया है कि गीता हिंदू दर्शन और नीति शास्त्र के सबसे प्रामाणिक ग्रंथों में है और सभी समुदाय के हिंदुओं नें इसे इसरूप में स्वीकार किया है। शास्त्री ने श्री कृष्णानंद स्वामी के कथन का भी जिक्र किया है जिसके अनुसार, गीता नीतिशास्त्र अथवा कर्तव्य धर्मशास्त्र है जोकि ब्रह्मविद्या से सिद्ध होता है। महर्षि अरविंद ने भी गीता को आचार–विचारों के क्षेत्र में सदैव जीता–जागता ग्रंथ बताया है। गांधी ने भी गीता के ग्रंथ को उपयोगी बताते हुए कहा है कि जब गांधी को जीवित अवस्था के मोह और जीवन के अर्थ की कसौटी के समय अचूक मार्गदर्शन की आवश्यकता थी, तो वो मार्गदर्शन गीता से उन्हें मिला। गांधी ने कहा है कि गीता सूत्र ग्रंथ नहीं है, गीता एक महान धर्म काव्य है; गीता का मूल मंत्र कभी नहीं बदल सकता; गीता जन समाज के लिए है; और इसमें एक ही बात को अनेक प्रकार से समझा कर बताया गया है। गीता का आरंभ होता है, अर्जुन के प्रश्न से और यह प्रश्न तब किए गए जब अर्जुन का हृदय, उसकी प्राणगत वासनाएँ, उसकी संपूर्ण चेतना शून्य हो गई थी; उसे धर्म का पता नहीं चल पा रहा था कि वह क्या करे और क्या न करे। इसलिए अर्जुन ने कृष्ण से प्रार्थना की कि मुझे वह वस्तु दीजिए जिसको मैंने खो दिया है, एक सच्चा धर्म दीजिए, धर्म का एक स्पष्ट विधान बताइए, एक मार्ग दिखा दीजिए जिसके अनुसार वह फिर दोबारा सद्मार्ग और सद्बुद्धि से चल सके। निश्चित ही अर्जुन जीवन या संसार के रहस्य और धर्म इन सब के उद्देश्य और हेतु को नहीं जानना चाहते थे। अर्जुन जानना चाहते थे केवल धर्म। और इसीलिए उन्होंने कहा कि मुझे निश्चित रुप से यह बताइए कि मेरे लिए क्या अच्छा है और उसका क्या करने का कर्त्वय है। अर्जुन के इस प्रश्न के सम्बन्ध में कृष्ण ने सुझाया कि वह, अर्जुन, स्वधर्म द्वारा निर्धारित और विहित कर्म अनासक्त भाव से करे।

अनासक्त भाव से कर्म किए जाने का उपदेश तो सरल है, किंतु अनासक्त भाव से कर्म करना कठिन है। अनासक्त भाव कैसे प्राप्त किया जाये, यह समस्या है। अनासक्त भाव से कर्म करने के लिए एक अभ्यास की आवश्यकता होती है। वह अभ्यास क्या है।

इसके बारे में गीता में कहा गया है। गीता में स्वधर्म के संबंध में तीन स्थानों पर विचार प्रस्तुत किए गए हैं। लेखक ने उक्त पाँचों मनीषियों द्वारा स्वधर्म पर अध्ययन करने के पश्चात यह पाया कि लोकमान्य तिलक का कहना है कि जो धर्म अपना लिया, वही उसका स्वधर्म है। गांधी के संदर्भ में महादेव देसाई का कहना है कि हमारे देश काल में जिस स्वधर्म को लेकर व्यक्ति ने जन्म लिया, वही उसका स्वधर्म है। विवेकानंद के अनुसार स्वधर्म तो गुरु ही बता सकते हैं। सभी विचारों पर अध्ययन के पश्चात लेखक ने पाया कि सबसे अधिक तर्कसंगत और संतोषजनक अवधारणा यह है,जिसे महर्षि अरविंद ने भी माना है,कि मानव एक देह धारी आत्मा है; मानव भौतिक व मानसिक विषयों में लगा रहता है; मानव अपनी प्रगति करने के लिए एक ऐसे गतिशील नियम के अनुसार कर्म करता है जिसका निर्धारण उसकी अंतरात्मा से होता है;तथाउसकी आत्मा का स्वभाव ही उसके जीवन स्वरूप, स्वभाव व स्वधर्म को सही रुप से अंकित करता है। प्रत्येक व्यक्ति का स्वधर्म उसकी अंतरात्मा का वह नियम है, जिसे उसको आवश्यक रुप से खोजना होता है, और उसका पालन करना होता है। वह कर्म उसका वास्तविक धर्म भी होता है, और उसका अनुसरण ही उसकी प्रकृति का अधिशासीहोता है। उसकी उपेक्षा केवल भ्रम, अवनति या भूल को जन्म देती है। सामाजिक, नैतिक व धार्मिक अथवा किसी अन्य प्रकार का नियम या विचार, जो अति उत्तम हो, स्वधर्म पालन में सहयोगी होता है। इस प्रकार गीता कहती है कि वह कर्म जिसका निश्चय व नियमन आत्मतत्व द्वारा हो, वही सब प्रकार के कर्मों का नियमन करे। इसका तात्पर्य बनावटी स्वभाव, चरित्र या आदत के सूक्ष्म भावों सेनहीं है, बल्कि इसका आशय अंतःकरण से है या प्राणी में मौजूद दैवी आत्मतत्व से है। इससे जो भी प्रकट होता है या निकलता होता है, वही वास्तव में सार है, और उचित है। बाकी सब तो क्षण मात्र के विचार हैं जिसमें भावनाओं का अनुकरण, आदतें, इच्छाएं आदि शामिल हैं, और ये सब तोऊपर–ऊपरकी बातें हैं, या बाहरी प्रभाव द्वारा बनायी गई बातें हैं और बदलने की प्रकृति वाली है। किंतु स्वधर्म हमारी आंतरिक प्रकृति से मात्र आदेशित ही नहीं होता, बल्कि उससे अभिव्यक्त भी होता है, यह स्थायी होता है, यही तत्व स्वधर्म है और यही आध्यात्म तत्व है जोकि वास्तव में आत्मतत्व में निहित है और विश्व के बदलते समय व वातावरण में हमेशा स्थाई है। स्वधर्म की अवधारणा केवल एक भारतीय अवधारणा नहीं है, बल्कि पश्चिम दर्शन व विचारों में भी स्वधर्म वर्णित है और कई पश्चिमी दार्शनिकों ने तो स्वधर्म को नियति से जुड़ा भी माना है। मैक्स वेबर ने कहा है कि यूरोप में सोलहवींसदी में ईसाई धर्म के सुधारक लूथर ने व्यक्ति द्वारा किए जाने वाले कार्य को दैवी शक्ति से संचालित माना है। लूथर का कहना था कि व्यक्ति के सारे कार्य दैवी शक्ति द्वारा पहले से ही निश्चित होते हैं और व्यक्ति को

अपने सारे कर्मों को उस ईश्वरीय शक्ति के द्वारा निश्चित कार्य क्षेत्र के अंतर्गत ही करना चाहिए। लूथर परंपरावादी है और उन्होंने कर्मों को एक ईश्वरी आदेश के रूप में वर्णित किया है। इसी प्रकार जान मेकेन्जी ने कहा है कि मनुष्य स्वतः प्रकट नहीं होता है, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति कुछ खास गुण अपने साथ लेकर पैदा होता है और किसी विशेष पर्यावरण में पैदा होता है और सामान्यता व्यक्ति को अपना कर्म क्षेत्र इन्हीं सीमाओं में पूर्वनिश्चित मिलता है। जन्म लेने पर मनुष्य अपने को एक विशेष स्थान पर पाता है, और उक्त पूर्वनिश्चित स्थिति व परिस्थिति में ही वह अपने जीवन को आगे बढ़ाता है; उसके सबसे प्रमुख कर्तव्य उसके अपने कार्यों के सफल संपादन से संबंधित होते हैं; और व्यक्ति को आदेश होता है कि जो उसके सबसे करीब कर्तव्य हो उस कर्तव्य को उसे करना चाहिए। मनुष्य कभी निर्वात में नहीं रहा है; अर्थात्, ऐसी अवस्था में नहीं रहा है कि उसका कोई कर्तव्य न हो। मनुष्य का नैतिक प्रयास इस बात से जाहिर नहीं होता है कि उचित और अनुचित के बारे में अपनीमनमानी व व्यक्तिगत कल्पनाएं बनाये; या अपने लिए एक नई नैतिकता बनाए; या कोई ऐसा आदर्श बनाए जिसको पहले कभी नहीं बनाया गया हो। मनुष्य जिस नैतिक संसार में है, उसे उसी को बनाए रखने और आगे बढ़ाने में नैतिक प्रयास करने होते हैं। इस प्रकार लेखक ने निष्कर्षस्वरुप कहा है कि स्वधर्म स्वभाव से निश्चित होता है। किसी सीमा तक स्वभाव अवश्य आनुवंशिकता पर आश्रित होता है।पर साथ–ही–साथ लेखक ने यह भी कहा है कि फिर भी आनुवंशिकता को हमारी परिस्थितियाँ बदल भी सकती हैं।

अब प्रश्न उठता है कि नियति और कर्म में स्वतंत्रता के क्या अर्थ हैं। लेखक ने कहा है कि पूर्व जन्म को माना जाए या न माना जाए और इसलिए पूर्व जन्म के आधार पर व्यक्ति को माना जाए या न माना जाए; वंशानुक्रम तो एक वास्तविक सत्य है, और यह तो निश्चित ही मानव की इच्छा के क्षेत्र के बाहर है व नियंत्रण के बाहर है। किस काल में, किस देश में, किस वातावरण में, किस परिवार में मानव जन्म लेता है, इनका निश्चय मनुष्य नहीं करता है; कोई अदृश्य शक्ति ही नियत करती है। पूर्वजों से जो जीन किसी व्यक्ति नें आनुवंशिकता के कारण प्राप्त की हैं, वह भी एक प्रकार से नियति ही है।

वर्तमान में जेनेटिक्स के क्षेत्र में हुए शोधकार्य भी बताते हैं कि मानव की चारित्रिक विशेषताएं लगभग जीन पर आधारित होती हैं। हालांकि यह विषय बहुत कठिन है कि किस जीन का क्या प्रभाव है और आनुवंशिकता से प्राप्त जीन से स्वभाव में क्या परिवर्तन किए जाने की कोई संभावना है।फिर भी शोधकार्य यह बताते हैं कि बहुत से केसेस में बहुत अधिक मात्रा तक मनुष्य के आचरण की विशेषताएं वंशानुक्रम से प्रभावित होती हैं। बुद्धि और स्मरणशीलता,रचनात्मकता और क्रियात्मकता स्तर, संकोच और सामाजिकता इत्यादि सभी कुछ, कुछ अंशों में वंशानुक्रम प्रभाव को बताते हैं। परंपरागत मान्यता के अनुसार आनुवंशिक प्रभाव बचपन में महत्वपूर्ण होते हैं, किंतु बच्चे की परिपक्वता के साथ–साथ आनुवंशिकता का स्थान

परिवेश संबंधी प्रभाव ले लेते हैं। किंतु आधुनिक जेनेटिक्स खोजों ने यह भी स्पष्ट किया है कि बहुत से चरित्र संबंधी लक्षणों में वंशानुक्रम प्रभाव बचपन और किशोर अवस्था में कम होने के बजाए बराबर बढ़ते रहते हैं। परंपरागत जैनेटिक के शोध बताते हैं कि आचार–व्यवहार संबंधी विकास में अनेक महत्वपूर्ण परिवेशीय प्रभाव पारिवारिक सदस्यों में सामूहिकरुप से विद्यमान रहते हैं; न कि व्यक्तियों के निजीरुप में। आचार–व्यवहार मनुष्य के आनुवंशिक जींस और उसके वातावरण से प्रभावित होता है। मनुष्य के स्वभाव पर अध्ययन से सिद्ध होता है कि जेनेटिक तत्वों नें बहुत अधिक मात्रा में व्यवहारगत लक्षणों में भिन्नता को सिद्ध किया है। किसी एक जीन से एक विशेष प्रकार का व्यवहार निर्धारित नहीं होता। स्वभाव, व्यवहार, बहुसंख्यक जींस तथा अनेक अन्य कारकों से प्रभावित होकर बनता है और यह प्रक्रिया बहुत जटिल होती है।किन्हीं निश्चित जेनेटिक कारकों की विद्यमानता अन्य जेनेटिक कारकों को प्रदर्शित कर सकती है, अथवा दबा सकती है। जींस कभी प्रभावी होती हैं, और कभी प्रभावी नहीं होती हैं।इसके अलावा, अनेक अन्य कारण किसी जीन के प्रभाव को रोकने में भी कार्य करते हैं। अतः निष्कर्ष यह है कि जीवन में नियति की महत्वपूर्ण भूमिका है।

लेखक ने शंकराचार्य, विवेकानंद, तिलक आदि मनीषियों के विचारों का अध्ययन इस बात को जानने के लिए किया है कि यह अनासक्त कर्म क्या है। मनीषियों के विचारों का अध्ययन करने के बाद लेखक कहते हैं कि बंधन कुछ कर्म का, या धर्म का, या गुण कानहीं है;बल्कि मन का है। इसलिए व्यवहारिक कर्मों के फल के बारे में जो आसक्ति होती है, उसे इंद्रिय निग्रह से धीरे–धीरे घटाकर शुद्ध, अर्थात्, निष्काम बुद्धि से कर्म करते रहने पर कुछ समय के बाद साम्य–बुद्धिरूप–आत्मज्ञान शरीर की इंद्रियों में समा जाता है, और अंत में पूर्ण सिद्धि मिलती है। यथाशक्ति और यथाधिकार निष्काम कर्म करने से जब कर्म का बंधन छूट जाए तथा चित्तशुद्धि द्वारा अंत में पूर्ण ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो जाए,तब यह महत्त्व का प्रश्न उपस्थित होता है कि अब आगे, अर्थात्, सिद्धअवस्था में ज्ञानी और स्थितप्रज्ञ व्यक्ति कर्म ही करता रहेगा, या प्राप्त वस्तु को पाकर कृतकृत्य होकर माया–सृष्टि के सब व्यवहारों को बेकार और अज्ञान समझकर एकदम उनका त्याग कर दे। यद्यपि इन दोनों पक्षों के सम्बन्ध में मत हैंकि पूर्ण ज्ञान होने पर आगे कर्म करें (यानी, कर्मयोग की अनुपालना करें), या कर्म संन्यास ले लें। फिर भी गीता के कुछ सांप्रदायिक विद्वानों ने यह प्रश्न उठाया कि क्या अंत में मोक्ष प्राप्ति करा देने के लिए दोनों मार्ग एक जैसे हैं, अथवा कर्मयोग केवल पहली सीढ़ी है, और अंत में मोक्ष की प्राप्ति के लिए कर्म छोड़कर संन्यास ही लेना चाहिए। गीता के दूसरे और तीसरे अध्याय में जो वर्णन है उससे ज्ञात होता है कि यह दोनों मार्ग स्वतंत्र हैं। कर्मसंन्यास मार्ग के समर्थक कहते हैं कि कर्मयोग स्वतंत्र रीति से मोक्ष प्राप्ति का मार्ग नहीं है। पहले चित्त की शुद्धि के लिए कर्म करना चाहिये और अंत में सन्यास ही लेना चाहिए, क्योंकि संन्यास ही अंतिम अर्थात्, मोक्ष निष्ठा है। किंतु इस अर्थ को स्वीकार कर लेने से;गीता ने जो यह कहा है कि सांख्य/संन्यास और योग/कर्मयोग यह दो

प्रकार की निष्ठायें इस संसार में हैं; द्विविधा सर्वथा नष्ट हो जाती है। कर्मयोग शब्द के तीन अर्थ हो सकते हैं। पहला अर्थ यह है कि ज्ञान हो या न हो, चातुर्वर्ण के यज्ञयागआदि कर्म। अर्थात्, श्रुति–स्मृति वर्णित कर्म करने से ही मोक्ष मिलता है। परंतु मीमांसकों का यह कहना गीता के अर्थ में मान्य नहीं है। दूसरा अर्थ यह है कि चित्त शुद्धि के लिए कर्मयोग अर्थात्, कर्म करने की आवश्यकता है और इसलिए केवल चित्त शुद्धि के लिये ही कर्म करना है। इस अर्थ के अनुसार कर्मयोग पहले होता है और बाद में संन्यास मार्ग। परंतु यह भी गीता में बताया गया कर्मयोग नहीं है। जो जानता है कि अपने आत्मा का कल्याण किसमें है, वह ज्ञानी पुरुष स्वधर्म अनुसार सांसारिक कर्म मृत्युपर्यंत करे या न करे; यही गीता का मुख्य प्रश्न है। और इसका उत्तर यही है कि ज्ञानी पुरुष को भी चातुर्वर्ण में सब कर्म निष्काम बुद्धि से करने ही चाहिए। यही कर्मयोग शब्द का तीसरा अर्थ है और गीता में यही कर्मयोग बताया गया है। गीता में स्पष्ट कहा गया है कि ज्ञान प्राप्ति हो जाने से निष्काम कर्म बंधक नहीं हो सकते;बल्कि संन्यास से जो मोक्ष प्राप्त करना है वही इस कर्मयोग से भी प्राप्त होता है। इसलिए गीता का कर्मयोग संन्यास मार्ग कीपहली सीढ़ीनहीं है। किंतु ज्ञान प्राप्ति के बाद यह दोनों मार्ग मोक्ष दृष्टि से स्वतंत्र अर्थात्बराबर हैं। गीता का यही अर्थ है।गीता के तीसरे अध्याय का तीसरा श्लोक और तेहरवें अध्याय का चौबीसवाँ श्लोक इस बात को स्पष्ट करते हैं। यदि यह निश्चय करें कि कर्मसन्यास और कर्मयोग दोनों स्वतंत्र रीति से मोक्षदायक हैं, एक–दूसरे के पूर्व अंग नहीं हैं, तो भी बात नहीं बनती। क्योंकि यदि दोनों मार्ग एक ही से मोक्षदायक हैं, तो कहना पड़ेगा कि इनमें से जो मार्ग हमें पसंद होगा उसे हम अपना लें/चुनलें। इसलिए अर्जुन ने स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न किया है कि इन दोनों मार्गो में से जो अधिक प्रशस्त हो वह एक ही मार्ग निश्चय कर के मुझे बतलाइए। पाँचवें अध्याय के आरंभ में अर्जुन के इस प्रकार का प्रश्न कर चुकने के बाद अगले श्लोक में उत्तर दिया गया कि हालांकि संन्यास और कर्मयोग यह दोनों मार्ग निःश्रेयस्कर हैं, अर्थात्, मोक्षदायक हैं,अर्थात्, मोक्ष दृष्टि से एक ही योग्यता के हैं;फिर भी इन दोनों में से कर्मयोग श्रेष्ठ या विशेष है। कर्मयोग की श्रेष्ठता के संबंध में गीता में यह एक ही वचन नहीं है, बल्कि ऐसे अनेक वचन हैं। कर्मों को छोड़ने के झगड़े में नहीं पड़कर इंद्रियों के विषयों के भोग में न पड़कर अनासक्त बुद्धि के द्वारा कर्मेंद्रियों से कर्म करने वाले की योग्यता विशेष है। अकर्म की अपेक्षा कर्म श्रेष्ठ है। इसलिए कर्म ही करना चाहिए; कर्मयोग को अंगीकार करना चाहिए; ज्ञान मार्ग वाले संयासी की अपेक्षा कर्मयोगी की अधिक योग्यता है। नियत कर्मों का संन्यास करना उचित नहीं है। आसक्ति रहित सब काम सदा करने चाहिए। गांधी ने अनासक्ति कर्म के बारे में कहा है कि मनुष्य को ईश्वररूप के बिना शांति नहीं मिलती। ईश्वररूप होने के प्रयत्न करने को सच्चा और एक पुरुषार्थ कहते हैं; और यही आत्मदर्शन है। आत्मार्थी को आत्मदर्शन का एक अद्वितीय उपाय गीता में बताया गया है। गीता ने अनेक रूपों में अनेक शब्दों में पुनरावृत्ति का दोष स्वीकार करके भी अच्छी तरह से आत्म दर्शन करने का

उपाय बताया है। यह अद्वितीय उपाय है, कर्मफलत्याग। जहाँ शरीर है, वहाँ तो कर्म रहेगा ही; कर्म से किसी को छुटकारा नहीं है। किंतु कर्म में कुछ दोष तो निश्चित ही हैं, और मुक्ति तो निर्दोष की ही होती है। तो कर्म बंधन/दोष–स्पर्श से छुटकारा कैसे मिले। निष्काम कर्म से, यज्ञार्थ कर्म करके, कर्मफल त्याग करके, सब कर्मों को ईश्वर को समर्पित करके; अर्थात्, मन–वचन और शरीर को ईश्वर में समर्पित करके यह हल गीता में बताया गया है। इस प्रकार आत्म दर्शन किए जा सकते हैं। गीता की नीति कहती है कि कर्म बिना किसी ने सिद्धि नहीं पाई है। एक ओर कर्म बंधनरूप है और दूसरी ओर मनुष्य इच्छा–अनिच्छा से भी कर्म करता रहता हैव शारीरिक या मानसिक सभी चेष्टाओं को कर्म बतौर करता रहता है। किंतु गीता का कहना है कि फल से आसक्ति छोड़ो और कर्म करो; आशारहित होकर कर्म करो; निष्काम होकर कर्म करो। जो कर्म छोड़ता है, वह गिरता है; और कर्म करते हुए भी जो उसका फल छोड़ता है, वह चढ़ता है। फलत्याग का अर्थ कर्म के परिणाम के प्रति लापरवाह न रहकर, परिणाम और साधन का विचार और उसका ज्ञान रखते हुए जो मनुष्य परिणाम की इच्छा किए बिना साधन में जुटा रहता है, वह कर्मफलत्यागी है। कर्मफलत्याग से आशय है कि फल के बारे में आसक्तिनहीं रखना। कर्मफलत्याग का फल हजार गुना मिलता है। यदि मनुष्य फल का परिणाम का ध्यान करता है तो वह बहुत बार कर्म/कर्तव्य पथ से अलग हो जाता है, उसमें अधीरता आ जाती है, वह क्रोध के वश में हो जाता है, वह न करने योग्य कर्म में लग जाता है, वह एक कर्म से दूसरे और दूसरे से अनेक में फंसता चला जाता है, वह नीति और अनीति का विवेक छोड़ कर येनकेनप्रकारेण फल प्राप्त करने के लिए अनीति पूर्ण साधनों से काम लेता है और उसे धर्म मानता है। ऐसे मनुष्यों की दशा देखकर ही गीता ने बताया है कि कर्मफलत्याग करो; क्या करना है और क्यानहीं करना है; इस के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए। क्योंकि इसके बारे में बड़े–बड़े ज्ञानी भी असफल रहे हैं। तमाम अध्ययन के बाद लेखक ने पाया कि गीता का संदेश है कि मनुष्य को कर्म करना चाहिए और वह कर्म जोकि उसका स्वधर्म है। निश्चित ही कर्म से फल मिलेगा। किंतु मनुष्य को कर्म के फल के प्रति आसक्ति नहीं रखनी चाहिए; कर्म के प्रति जागरुक रहते हुए कर्म के फल से आसक्ति नहीं रखना चाहिये।

लेखक ने इसके बाद में यह है ज्ञात करना चाहा कि अनासक्त भाव कैसे प्राप्त हो। इस संबंध में लेखक ने पाया है कि गीता एक सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक रचना है।गीता किसी काल या देश तक सीमित नहीं है। गीता मानती है कि विभिन्न व्यक्तियों का स्वभाव, चित्त एवं वृत्ति अलग–अलग होती है, और इस कारण से गीता में अनासक्ति की स्थिति प्राप्त करने के लिए किसी एक प्रकार के प्रयास करने के बारे में बात नहीं की है। लेकिन यह अवश्य बताया है कि अलग–अलग तरह से अनासक्ति कैसे प्राप्त हो। मनीषियों के विचारों का गहन व समालोचनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् लेखक इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि गीता; इन प्रश्नों का कि व्यक्ति के लिए क्या भला है व व्यक्ति को क्या करना चाहिए; यह कहती है कि मनुष्य को

अपने स्वभाव से विहित कर्मों को अनासक्ति पूर्वक करना चाहिए एवं अनासक्ति भाव मनोनिग्रह, संयम एवं ध्यान से प्राप्त किया जा सकता है। व्यक्ति को अपने स्वभाव द्वारा निर्धारित स्वधर्म के द्वारा विहित कर्म को अनासक्त भाव से तो करना ही चाहिए लेकिन यह कर्म लोकसंग्रह की दृष्टि से और यज्ञार्थ, अर्थात्, ईश्वर को समर्पण करने के भाव से, करना चाहिए। ईश्वर को समर्पण करने के भाव से करना चाहिए का अर्थ हुआ कि कर्म और भक्ति के बारे में जानने की जिज्ञासा। इस जिज्ञासा के बारे में लेखक ने पाया है कि यदि व्यक्ति अपने कर्म ईश्वर को समर्पित नहीं कर सकता है, तो फलों की इच्छा रखे बिना कर्म करे; व्यक्ति फल के सब विचारों को त्याग कर आत्मानुशासन और कर्म में लग जाए। भक्ति के बताए गए अनेक मार्गों में से किसी भी मार्ग का अनुसरण यदि व्यक्ति न करे, तो भी फल की इच्छा रखे बिना कर्म के मार्ग को अपनाए; क्योंकि यह भी भक्ति का ही एक रूप है। इस प्रकार अनासक्त कर्म अंततः भक्ति बन जाता है, और हम यज्ञ वास्ते यानी परोपकार वास्ते कर्म करते हैं, या कह सकते हैं कि अपने अंतर्मन का उच्चतर मन के लिए बलिदान करते हैं। तो इस प्रकार निष्कर्ष यह हुआ कि प्रत्येक व्यक्ति को स्वभाव से निर्धारित स्वधर्म के द्वारा विहित कर्म लोकसंग्रह की दृष्टि से करने चाहिए। इस प्रकार कर्म करने की योग्यता व्यक्ति को अभ्यास एवं ऐसे व्यक्तिगत गुणों का विकास करने से प्राप्त होती है जो कि भारतीय संस्कृति के स्वीकृत मूल्य हैं; और इन व्यक्तिगत गुणों को यदि एक शब्द में कहा जाए तो वह हैं संयम।

(रिचर्डसन व पॉवेल, 2011) की इस पुस्तक को अमेरिकन एजूकेशनल रिसर्च एसोसिएशन ने 'आउटस्टैंडिग बुक अवार्ड' प्रदान किया है। लेखकद्वय स्पेशल एजूकेशन क्षेत्र के विश्व प्रसिद्ध चिन्तक, शोधार्थी व शिक्षक हैं। लेखकों ने शिक्षा के इतिहास व वर्तमान स्थिति के बारे में सबसे पहले जिक्र किया है। वैश्विक स्थिति का अन्वेषण किया है। पुस्तक में वर्णन दर्शनशास्त्र, समाजशास्त्र, शिक्षाशास्त्र तथा राजनीति शास्त्र के सिद्यान्तों का जिक्र करते हुए किया गया है। पुस्तक में कहा गया है कि स्पेशल एजूकेशन क्षेत्र में अन्य प्रकार के शिक्षा क्षेत्रों की तुलना में प्रगति नहीं हुई है। यह भी बताया गया है कि शिक्षण की वर्तमान चिन्ताओं में शिक्षक–विद्यार्थी अनुपात, शिक्षण प्रतिमान तथा शिक्षण उत्तरदायित्व प्रमुख हैं। समावेशी शिक्षा की सामान्य विद्यार्थियों की शिक्षा के साथ तुलना भी प्रस्तुत की है। प्रथम अध्याय में निसक्त लोग तथा उनकी शिक्षा के बारें में, अगले दो अध्यायों में स्पेशल एजूकेशन की उत्पत्ति, विश्व के विभिन्न भागों की स्पेशल एजूकेशन की तुलना तथा विरोधामास का वर्णन है। चौथे व पाँचवें अध्याय में स्पेशल एजूकेशन प्रणाली का ऐतिहासिक वर्णन देते हुए स्पेशल एजूकेशन के प्रति समाजशास्त्रीय धारणाएँ प्रस्तुत की हैं। छठे अध्याय में विरोधाभास का वर्णन है। सातवें अध्याय में कानूनी विधान तथा नीति का विकास वर्णित है। लेखक ने अन्त में कहा है कि हैंडीकैप स्थिति बहुधा गरीबों और निम्नवर्गीय कामगरों से सम्बन्धित है और इसलिये उपेक्षित है और

दागी है। उन्होनें सुझाव दिया है कि निशक्त लोगों की शिक्षा की समस्या का भविष्य में सुधार करने हेतु गरीबों व निम्नवर्गीय लोगों को दूरस्थ शिक्षा माध्यम के अलावा अन्य माध्यमों से भी शिक्षित करने का प्रयत्न करना चाहिये।

(रेनॉल्ड, 2011) ने 'चिन्तन' की उत्पत्ति तथा वर्तमान में इसके स्वरूप का वर्णन करते हुए 'चिन्तन' की कार्यकारी परिभाषा दी है। शोधकर्ता ने 'अलोचना चिन्तन', इसकी औचित्यता, तथा इसके तत्वों का ब्यौरा देते हुए इसको एक्शन लर्निंग में मुनासिब रूप से उपयोग करने को सुझाया है।

(होगन, 2011) का मानना है कि शिक्षक की स्वयं की सूझ–बूझ का नाता होता है, स्वयं से, अध्ययन विषयों से, छात्रों से और अपने साथियों से, बच्चों के माता–पिता से तथा अन्य लोगों से। शोधकर्ता कहते हैं कि इन नातों के होते हुए भी शिक्षक समुदाय के व्यवहार में इन नातों को ध्यान नहीं रखा जाता है। और चूँकि शिक्षकों को व्यवहार में इन समस्त बातों का प्रयोग करना चाहिये, फिर भी यदि इन बातों में से किसी बात को भी शिक्षा में उपयोग नहीं लाया जाता है, तो शिक्षा के समग्र उद्देश्य की प्राप्ति असम्भव होती है। कुछ शिक्षक सिर्फ उन विषयों तक ही अपना सम्बन्ध समझते जिनकों उन्हें पढ़ाना होता है और वो सिर्फ सिलेबस पूरा करने तक की अपनी जिम्मेदारी समझते हैं। कुछ शिक्षक अपनों को छात्रों का सिर्फ शिक्षक ही समझते हैं और पढ़ाये जाने वाले विषयों पर ज्यादा ध्यान नहीं देते। शोधकर्ता ने यह भी वर्णन किया है कि शिक्षा जगत में भी शिक्षा–नीति, 'वाद' (इज्म) के जाल में फंसकर, विहित उद्देश्यों को प्राप्त नहीं कर पाती है। शिक्षक नीति वाली बातों का पालन करना बहुत कम कर्तव्य समझते हैं; अधिकतर शिक्षा–नीति को न्यायिक प्रक्रिया, या उपयोगिता सम्बन्धी या अन्य नजरियों से देखते हैं। जबकि वास्तव में, किसी भी नीति की पालना का अर्थ होता है, उससे सम्बन्धी विषय में निहित दर्शन, गूढ़बातों, शुभफलों तथा दुष्फलों के बारे में ज्ञान रखना और तद्नुसार अनुपालन करना।

(त्रिवेदी, 2011) ने पाया कि वर्ष 1947 में भारतीय स्वतन्त्रता दिलाने में प्रमुख नेता, गांधी, के कारण विश्व में वर्ष 1947 के बाद उपनिवेशवाद खत्म होने की लहर उत्पन्न हो गई। किन्तु विश्व में लेखकों, पाठकों, इनसाइक्लोपीडियाओं ने गांधी के प्रभाव के प्रति चुप्पी साध ली। उपनिवेशवादसे मुक्ति पाये हुए समुदाय सहित सभी ने गांधी को भुला दिया। शोधकर्ता ने तर्क दिया है कि उपनिवेशवाद के खात्मे की वजह गांधी द्वारा प्रस्तावित व प्रयोग में लायी गयी अहिंसा थी। शोधकर्ता ने गांधी के अहिंसा सिद्धान्त के पालक लीलागांधी, राबर्ट यंग और शहीद अमीन के कार्यों का विशेषतौर पर अध्ययन किया। शोधकर्ता ने गांधी के सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों के पालना करने में परेशानियों को बताया हैं।

(जैन, 2010) ने महात्मा गांधी और लॉरी बेकर, जो कि बर्मिघंम के वास्तुकार थे, के बारे में शोध की है। उन्होने पाया कि बेकर महात्मा गांधी से मिले और इतने अधिक प्रभावित हुए कि भारत में ही रहने लगे। बाद में बेकर को 'घरेलू वास्तु के महात्मा गांधी' के नाम से जाना गया। बेकर ने गांधी के विचारों से प्रभावित होकर गरीबों के लिये सस्ते, सुलभ व आरामदायक आवासीय घरों की डिजायन तैयार की। बेकर की वास्तु वास्तव में संधारणीय है, सस्ती है, सामाजिक है तथा पर्यावरण के अनुकूल हैं।

(तिवारी, 2010) की दूसरी पुस्तक 'हिन्द स्वराज के प्रथम भाग में लेखक लिखते हैं कि हिन्द स्वराज गांधी के मस्तिष्कमें उठ रही एक गहरी उथल–पुथल के क्लाइमैक्स का औपचारिक पड़ाव है। आगे वे लिखते हैं कि भारत के जनांदोलनों और जनसमस्याओं को लेकर गांधी की सक्रिय भूमिका का आभाव या कोई अनुभव विवरण 'हिन्द स्वराज' का अंश नहीं माना जा सकता है।

(विन्च, 2010) ने पाया कि वर्तमान शिक्षा की प्रभाविता समझी जाती है इन बातों से कि शिक्षार्थी रोजगार हेतु उचित स्किल व ज्ञान प्राप्त करें {इस बात पर शिक्षा सबसे अधिक केन्द्रित है}, नागरिक कार्यों में भाग लें, सुख–चैन से रहें तथा विचारशील बनें। शोधकर्ता ने पाया कि इन सारे पक्षों पर केन्द्रित शिक्षा से, सम्भावित उपयुक्त जीवन को बनाना सम्भव नहीं है। शोधकर्ता ने पाया कि खुद की योग्यताओं का प्रयोग व विकास करना, दूसरों के साथ सहयोग करना, स्व की खोज करना तथा उत्कृष्टता प्राप्ति उन्मुख रहना– सभी – सम्भावित उपयुक्त जीवन के अंग हैं। जीवनके इन पक्षों की प्राप्ति हेतु शिक्षा को बनाना चाहिये।

(हरि, 2010) की नीति की बातें नामक पुस्तक में नीति की उन बातों को लिखा गया है जिनके आधार पर व्यक्ति जीवन में सुख और शांति से रह सकते हैं। इस पुस्तक में जिज्ञासुओं के आत्मशोधन के लिए नीति की वो बातें दी गई है जो बहुत महत्वपूर्ण हैं। आत्मशोधन के बिना वास्तविक सुख नहीं मिल सकता है, और न ही शांति मिल सकती है। इस पुस्तक में बताई गई बातों को व्यवहार में लाने पर व्यक्ति अपने जीवन को सुखमय और शांतिमय बना सकता है।
हरि ने कहा है कि अच्छे रास्ते पर चलना और बुरे रास्ते को छोड़ देना नीति है। इस प्रकार की नीति की बातें जन्म के बाद घर में और उसके बाद विद्यालय में सीखी जाती हैं। माता सबसे पहले अच्छी–अच्छी बातों को अपने बच्चों को सिखाती है, फिर पिता सिखाते हैं। पहले समय में बचपन में ही बच्चों को धर्म–नीति और सदाचार की अच्छी–अच्छी बातें घर में ही सिखा दी जाती थीं/रटा दी जानी चाहिये। इस प्रकार से बाल्यकाल में ही बच्चों में नीति और सदाचार

का बीज बोया जा सकता है। यह बीज बच्चों के बड़े होने पर बहुत मधुर परिणाम सकने में सक्षम है। इन बातों को करने से बच्चे में अच्छे संस्कार बनते हैं।

निःसंदेह संस्कार बनाने के लिए बच्चों को अपने गुरुजनों व माता–पिता आदि बड़ों की अच्छी बातों का पालन करना होता है।हर जगह साहित्य में अच्छी–अच्छी अनुपालनीय बातें लिखी मिल सकती हैं, किंतु इन सब साहित्य का अध्ययन करके अच्छी बातें यदि व्यक्ति सीखना चाहता है तो उसको उन बातों को पढ़ने में ही पूरा जीवन गुजार देना होगा, और हो सकता है फिर भी वह अच्छी बातों का ज्ञान प्राप्त न कर पाए। बचपन में तो इन बातों को पढ़ना सम्भव नहीं है। इस प्रकार बचपन इन अच्छी–अच्छी बातों के बिना सीखे गुजर जायेगा। इसलिए बड़ों के द्वारा व विद्वानों के द्वारा जो बातें साहित्य में लिखी हैं उन बातों को बच्चों को रटाया/सिखाया जा सकता है, ताकि उनके सहारे वो जीवन पथ पर सुख व शांति में जीवन व्यतीत कर सकें।

लेखक ने बताया है कि प्राचीन काल में राजनीति भी नैतिकतापूर्ण रही है और वास्तव में देखा जाए तो राजनीति नीतिशास्त्र से अलग नहीं है। राजनीति में न्याय, आपस का मेल–मिलाप, सुमति, सद्व्यवहार, शुद्ध साधन, वगैरह–वगैरह शामिल होते हैं। महाभारत ग्रंथ में बताया गया है कि एक समय ऐसा भी था जिस समय कोई राजा नहीं था, न ही कोई राज्य था और न ही कोई दंड व्यवस्था थी। उस समय धर्म के डर से लोग एक–दूसरे की रक्षा किया करते थे, एक दूसरे का सहयोग किया करते थे, व एक दूसरे की सहायता किया करते थे। किंतु बाद में धीरे–धीरे लोगों में मैं–पन की भावना आ गई और इस कारण वह धर्म के रास्ते से अलग चलने लगे, और परिणाम यह हुआ कि लोग एक दूसरे के अहित के काय, एक दूसरे के लिये दुःखदायी कार्य को करने लगे। तब कुछ पुरुषों का जन्म हुआ जिन्होंने प्रतिज्ञा की कि वह समस्त लोगों को उचित व समानता का व धर्मका व्यवहार करना सिखाएंगे, और यदि कोई व्यक्ति धर्म के अनुसार नहीं चलेगा तो उसको दंडित किया जाएगा, और इस प्रकार राजा या शासक का निर्माण हुआ। फिर यह निर्धारित किया गया कि राजा को कैसा होना चाहिए। राजा को संयमी होना, पराई स्त्री के साथ संपर्क में न रहना, पराए धन को अनीतिपूर्वक न लेना, अनीति का आचरण न करना, अधर्म का व्यवहार नहीं करना, अनर्थकारी व्यवहार किसी के साथ नहीं करना, न्याय की रक्षा करना, शत्रुओं के साथ भी कुटिल व्यवहार न करना, विद्वानों के प्रति क्षमाशील होना, राष्ट्र की संपत्ति का विवेकपूर्वक वितरण करना, दुर्बलों की रक्षा करना, दंड देने में अपने और पराए का भेद न करना, और न्याय पूर्वक शासन करना आदि विशेषताएं निर्धारित की गई थीं।

लेखक ने बताया है कि शील–सदाचार लोक व्यवहार पर टिकते हैं। लोक व्यवहार के अंतर्गत इन बातों का समावेश होता है। माता–पिता का अपने बच्चों के प्रति और बच्चों का वर्ताव अपने माता–पिता के प्रति, भाई का व्यवहार भाई के प्रति, पत्नी का व्यवहार पति के प्रति व पति का

व्यवहार पत्नी के प्रति, स्वामी का व्यवहार सेवक के प्रति और सेवक का व्यवहार स्वामी के प्रति, कैसा होना चाहिए आदि बातें लोक व्यवहार के अंतर्गत आती हैं। यदि लोक व्यवहार की नीति मूलक बातों को बच्चों को व बड़ों को कंठस्थ करा दिया जाए तो घर–गृहस्थी, व्यक्ति और समाज में बहुत अच्छे व प्रेमपूर्ण संबंध बनते हैं।

लेखक ने सत्य के बारे में कहा है कि दान, यज्ञ, तप और वेद सभी सत्य मूलक हैं। अतः सभी लोगों को इन सत्य का पालन करना चाहिए। सत्य की पूजा सज्जन पुरुष करते हैं। सत्य से ही देवता, मुनि और मनुष्य पूजनीय बनते हैं। सत्य बोलना अच्छा काम है तथा इसके बराबर कोई अच्छा काम नहीं है। सत्य को ब्रह्म कहा है। सत्य ही तप है। सत्य से ही मनुष्य अंधकाररूपी असत्य से बाहर आता है। सत्य का अर्थ दम है, और दम का अर्थ मोक्ष है। यह सबसे बड़ा अनुशासन है। आत्मा का दर्शन सत्य और तप से ही किया जा सकता है। सत्य से विजय मिलती है, तथा असत्य से पराजय मिलती है। सत्य से मोक्ष मिलता है।

मित्रों के सम्पर्क से सुख मिलता है, इसलिए संसार में बुद्धिमान व्यक्ति को केवल मित्रता ही करनी चाहिए; शत्रुता नहीं। एक दूसरे से प्रेम करने के लिए, देना और लेना, गुप्त बातें कहना व पूँछना, खाना और खिलाना इन छः बातों का पालन करना चाहिए। मित्र के दुःख से खुद दुःखी होना चाहिए। कितना भी बड़ा अपना दुःख हो, उसे धूल के समान समझना चाहिए, और मित्र के छोटे से दुःख को भी बहुत बड़ा दुःख समझना चाहिए। मित्र को बुरे मार्ग से हटाकर अच्छे मार्ग में चलाने का प्रयत्न करना चाहिए। मित्र के गुणों को उसे बताएं और उसके अवगुणों को उससे छिपाना चाहिए। मित्र से लेनदेन करने में शंका–सुबह नहीं करना चाहिए। मित्र के दुःख के समय अपने स्नेह को दोगुना कर देना चाहिए। मित्र के सामने तो बनावटी मीठे–मीठे वचन बोले किन्तु उसके पीठ पीछे उसकी बुराई करें; ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए। मित्र के प्रति मन में कोई कुटिल भाव नहीं रखना चाहिए। मित्रों के साथ कभी ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए कि उनसे मिलने पर तो मीठे–मीठे बातें करें, और उसके बाद में उन को कभी याद न करें।

प्रेम तीन प्रकार का होता है। पहले प्रकार का प्रेम उत्तम प्रेम कहलाता है, जो पत्थर पर खींची गई रेखा के समान होता है। दूसरे प्रकार का प्रेम मध्यम प्रेम कहलाता है, और यह प्रेम बालू पर खींची गई रेखा के समदृश्य होता है। तीसरे प्रकार का प्रेम निकृष्ट प्रकार का होता है, और यह प्रेम पानी पर खींची हुई रेखा के समान होता है। अर्थात्, उत्तम प्रेम कभी खत्म नहीं होता है, मध्यम प्रेम हवा के झोंकों के आने से थोड़े समय बाद रेखा के खत्म हो जाने की तरह कुछ समय बाद ही खत्म हो जाता है। निकृष्ट प्रेम दिखावटी प्रेम होता है; यानी, व्यक्त किया और प्रेम खत्म हो गया। इसी प्रकार वैर भी तीन प्रकार का होता है। पहले प्रकार का वैर अस्थाई प्रकृति का होता है, और वह तुरंत मिट जाता है। किंतु दूसरे प्रकार का वैर मध्यम प्रकार का होता है, जो थोड़ी देर रहता है;यानी बालू पर खींची गई रेखा के समान। और तीसरे प्रकार का

वैर वह होता है, जो पत्थर पर खींची रेखा के समान कभी नहीं मिटता है। इसलिये मनुष्य को उत्तम प्रेम करना चाहिये।

एक दूसरे व्यक्तियों में हित की भावना होनी चाहिए, और एक दूसरे का हित करना चाहिए। दूसरे के बंधन में पड़ने पर, पड़ोस में रहने पर, और यदि कोई मुसीबत आ पड़े तब एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति की मदद करना चाहिए और तब वह व्यक्ति हितैषी कहलाता है। मनुष्य को दूसरों के साथ मित्रता पूर्ण व्यवहार करना चाहिए, और इसके अनुसार यदि कोई दूसरा व्यक्ति विपत्ति में हो, तो उस व्यक्ति की मदद करना चाहिए।

संत, वृक्ष, नदी, पर्वत, और पृथ्वी यह हमेशा दूसरों का हित करते हैं। संत का दिल मक्खन के समान होता है, और वह दूसरों के दुःख को देखकर उसी प्रकार पिघल जाता है जैसे की गर्मी से मक्खन पिघल जाता है। अतः मनुष्य को संत जैसा होना चाहिये।

हर मनुष्य का सहज स्वभाव वचन, मन, और शरीर से दूसरों का उपकार करना होना चाहिए। दूसरों की भलाई के लिए खुद कष्ट उठा लेना चाहिए। हर व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह विषय–वासनाओं से दूर रहे, दूसरों के सुख में सुखी और दूसरों के दुःख में दुःखी रहे, उसका कोई शत्रु न हो,किसी से भेदभाव पूर्ण व्यवहार न करें, उसमें मदनहीं हो। हर व्यक्ति का यह भी कत्वर्य है कि वह काम, क्रोध, लोभ, हर्ष और विषाद से दूर रहे, ह्रदय कोमल हो, दीन मनुष्यों पर कृपा करे। मन, वचन व कर्म से ईश्वर की भक्ति हर व्यक्ति को करना चाहिये।मान–मर्यादा का ध्यान रखना, दूसरों से सम्मान पाने की भावना न रखना, कोई इच्छा व वासना व कामना न रखना भी मनुष्य का कत्वर्य है। हर व्यक्ति का कत्वर्य है कि वह ईश्वर परायण हो, मन में शांति रखे, व्यापार में भी सरल और शीतल हो, वैराग्य ववविनय और प्रसन्नता को धारण करे, सब से प्रेम करे, सबको अपना मित्र समझे। मनुष्य को कभी भी शांति, इंद्रिय–दमन, कर्तव्य और न्याय के पथ से डगमगानानहीं चाहिये। मनुष्य को चाहिये कि किसी के प्रति भी कठोर शब्द न बोले, अपने ह्रदय में काम और क्रोध न रखे, मान व अभिमान और मोह से अपने को कभी ग्रसित न करे। कभी लोभ और शोक न करे। किसी से भी राग व द्वेष न करे। किसी के प्रति भी कपट व दंभ न करे। हमेशा सभी के लिए प्रिय और हित करने वाले कार्य व व्यवहार करे। हमेशा दूसरों से विचार पूर्वक सत्य और प्रिय वचन बोले। दूसरे के पत्नी को अपनी पत्नी जैसा न समझे और दूसरे के धन को विष के समान समझे। दूसरे की संपत्ति देख कर आनंदित नहीं हो और दूसरे की विपत्ति देखकर सुखी न हो। जाति–पांति के हिसाब से भेदभाव न करे। सत्य और शील को धारण करे।प्रत्येक मनुष्य का कर्त्वय है कि अपने को आत्मबली, विवेक–युक्त, व इंद्रियों का दमनकारी बनाये; दूसरों के लिए परोपकारी बनाए; दूसरों के प्रति क्षमा व दया भाव रखे; हर स्थिति में संतोष रखे; दान करे; सद्बुद्धि रखे; निर्मल और स्थिर मन रखे; यम और नियम का पालन करे।

विद्वान व्यक्ति वह है जो अपने जीवन में श्रेष्ठ उद्देश्य को चुनें और निंदित बातों में ध्यान नहीं लगाए। विद्वान वह व्यक्ति है जो जिसको क्रोध, गर्व या सम्मान की इच्छा उसके नीति पथ से विचलित न करे। विद्वान की श्रद्धा अधिक होती है। विद्वान वह व्यक्ति होता है जो वह सब कुछ कर डालता है जिसे वह सोचता है; न कि बातें ही करता है। विद्वान व्यक्ति वह है जो सर्दी–गर्मी, अमीरी–गरीबी से विचलित नहीं होता है। विद्वान व्यक्ति हमेशा अपनी शक्ति के अनुसार ही इच्छा करता है, और अपने कर्म शक्ति के अनुसार करता है। विद्वान व्यक्ति कभी बिना पूँछे दूसरे के काम में दखलंदाजी नहीं करता है। विद्वान व्यक्ति खोई हुई चीज की चिंता नहीं करता है; विपत्ति में घबराता नहीं है; सम्मान से हर्षितनहीं होता है; अपमान से दुःखीनहीं होता है; अपनी मर्यादाओं को पहचान कर उसके अनुसार कार्य करता है। विद्वान व्यक्ति बिना कर्म के तो फल चाहना दूर की बात है, विहित कर्म के भी फल की अपेक्षा नहीं करता है।विद्वान व्यक्ति कभी अपने कर्तव्य को टालतानहीं है; अपने काम को शीघ्र करता है और दूसरों के कामों पर नजर नहीं रखता है।

जीवन में सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण गुण है, शील या सदाचार का। मनुष्य का शील उसका प्रधान गुण है। जिस व्यक्ति में शील नहीं है, उसके जीने का कोई अर्थ नहीं है, चाहे उसके पास अपरम्पार धन हो और बंधु कितने भी हों।

यह शरीर रथ है, आत्मा सारथी है, व इंद्रियाँ अश्व हैं। व्यक्ति का कर्तव्य है कि साधे हुए घोड़ों से रथों के समान सुखपूर्वक यात्रा करे, क्योंकि आत्मा ही आत्मा का भाई है और आत्मा ही आत्मा की दुश्मन है।इसलिए हमेशा व्यक्ति को संयत मन, बुद्धि और इंद्रियों की सहायता से अपने को पहचानना चाहिए। काम और क्रोध रूपी दो घड़ियाल व्यक्ति के शरीररूपी महीन बुने हुए जाल में छिपकर बुद्धि को नष्ट कर डालते हैं। अतः प्रत्येक व्यक्ति को काम और क्रोध रूपी इन दो घड़ियालों को दूर रखना चाहिए।

मानव का जीवन तभी सार्थक है जब उसके जीने से अनेक प्राणी जियें, अन्यथा उसका जीना तो पक्षी के समान है जो अपना पेट किसी तरह से भर लेते हैं।

हर व्यक्ति को ध्यान में रखना चाहिए कि जो काम बुद्धि से बन सकता है, वह बड़े–बड़े हथियारों व सेना से नहीं बनता है।

मानव होने का दायित्व है कि हर व्यक्ति अपनी शक्ति के अनुसार पुरुषार्थ करे। सज्जन पुरुष अपकारियों के साथ भी सज्जनता पूर्वक व्यवहार करते हैं। मानव जीवन के कार्य उद्यम करने से ही सिद्ध होते हैं, क्योंकि हिरण सोते हुए शेर के मुंह में स्वयं ही नहीं घुस जाता है। जिस प्रकार तालाब के पानी को बाहर निकालने से उस तालाब की रक्षा व रखरखाव होता है, उसी प्रकार व्यक्ति को अपने कमाए हुए धन का दान देना ही धन की रक्षा करना है। प्रत्येक व्यक्ति को दूसरों को दान करना चाहिए; लोभनहीं करना चाहिए तथा शांति व संतोष जीवन में रखना चाहिए; क्योंकि दान के बराबर कोई दूसरा खजाना नहीं है, लोभ से बड़ा इस पृथ्वी पर दूसरा

कोई शत्रु नहीं है, शांति के समान दूसरा कोई आभूषण नहीं है, और संतोष के बराबर कोई धर्म नहीं है।

प्रत्येक व्यक्ति को उदार चरित्र वाला होना चाहिए अर्थात्, पूरी पृथ्वी को अपना कुटुंब मानना चाहिए; न कि यह सोचे कि यह मेरा है और यह दूसरे का है। मनुष्य को सनातन धर्म का पालन करना चाहिए,जो यह सिखाता है कि जान जाने का मौका पड़ने पर भी व्यक्ति को अपने कर्तव्य को छोड़कर बुरा काम नहीं करना चाहिए।

मनुष्य को विद्या प्राप्त करनी चाहिए क्योंकि मनुष्य का महान सौंदर्य विद्या है; वह छिपा हुआ खजाना है। विद्याविहीन मनुष्य तो पशु ही है। प्रत्येक मनुष्य को विपत्ति मे धैर्य, उत्कर्ष में क्षमा, सभा में वाक्चातुर्य, और वेद शास्त्रों के अध्ययन का व्यसन रखना चाहिए।

मनुष्य को अपना स्वार्थ छोड़कर दूसरों के कार्य में अपने को संलग्न करना चाहिए, क्योंकि ऐसे व्यक्ति सत्पुरुष कहे जाते हैं। और इनके अतिरिक्त कुछ सामान्य कोटि के मनुष्य होते हैं जो अपने स्वार्थ से टकराने वाले दूसरों का कार्य करने को तैयार रहते हैं, और कुछ मनुष्य राक्षस रूप में होते हैं, जो अपने स्वार्थ के लिए दूसरों का अहित करते हैं।

मनुष्य को धीरज रखना चाहिए और न्याय के मार्ग से कभी पीछे नहीं हटना चाहिए, भले ही लोग उसकी निंदा करें या प्रशंसा करें, भले ही उनके पास अपार धन आए या सब धन चला जाए, और भले ही उसकी मृत्यु आज हो जाए या युगांतर में न हो।

(परेल, 2009) द्वारा सम्पादित 'हिन्द स्वराज एण्ड अदर राईटिंग' पुस्तक के दूसरे भाग में हिन्द स्वराज का अंग्रेजी मूलपाठ दिया गया है। प्रथम भाग में संपादक ने लम्बी भूमिका के अंतर्गत हिन्द स्वराज के विकास–क्रम, उद्देश्य, आधुनिक सभ्यता का इतिहास, द. अफ्रीका की राजनीति, भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन, पश्चिमी तथा भारतीय बौद्धिक समुदाय की मान्यता आदि तथा गांधी के विचारक्रम का विकास, पश्चिमी एवं भारतीय प्रभाव आदि व्याख्यायित किया है। भूमिका के अंत में ही 1909 से 1997 तक हिन्द स्वराज के विकास का तिथिवार तथा गांधी के जीवन की प्रमुख घटनाओं के तिथिवार के अलावा हिन्द स्वराज में उद्धत महत्वपूर्ण व्यक्तियों का परिचय क्रम अंकित हैं। तीसरा खण्ड परिशिष्ट की तरह है जिसमें 14 अक्टूबर 1909 को लंदन से एच. एल.एस. पोलक को; 30 अक्टूबर 1909 को लार्ड एम्टहिल को; 19 नवम्बर को टॉल्सटाय को लिखे पत्र का अंग्रेजी अनुवाद के अलावा हिन्द स्वराज लिखने के बाद गांधी के कई पत्र हैं। ये पत्र हिन्द स्वराज को समझने के लिए मददगार हैं। इनमें टाल्यटाय, बाइबर्ग, नेहरू से पत्र व्यवहार हैं। 1916 से लेकर 1947 तक आर्थिक और नैतिक विकास के संबंध में 'कलेक्टिव वर्क ऑफ महात्मा गांधी' के उद्धरण संकलित है। पृष्ठ 170 के बाद रचनात्मक कार्यक्रम की गांधी दृष्टि दी गई है। उन्होंने 18 रचनात्मक कार्यक्रम के अलावा 19 वें के रूप में सविनय अवज्ञा को भी दिया है। भारत छोड़ो आन्दोलन (1942) में दिये गये भाषण अंकित है, जो 'कलेक्टिव वर्क

ऑफ महात्मा गांधी' के खण्ड–76 से लिया गया है और जिसे अन्य खण्डों 69, 89, 25, आदि से समर्थित भी किया गया है। 'द पिरामिड बनाम द ओशियन सर्कल' में व्यक्ति, राज्य और विश्व समुदाय के संबंध में गांधी के विचार 'कलेक्टिव वर्क ऑफ महात्मा गांधी', खण्ड–85 (पृ. 32–34) से संकलित प्रश्न उत्तर के क्रम में हैं।

(किशोर, 2009) द्वारा लिखित पुस्तक 'हिन्द–स्वराजः गांधी का शब्द अवतार' हिन्द स्वराज के 20 खण्डों की समीक्षा पर आधारित है। हिन्द स्वराज के द्वारा गांधी उपनिवेशावादी मानसिकता या मानसिक उपनिवेशीकरण के खतरनाक परिणामों से सावधान करना चाहते थे। हिन्द स्वराज के प्रस्तावना में गांधी जी तीन उद्देश्यों को उल्लेखित करते हैः

1. देश की सेवा करना
2. सत्य की खोज करना
3. उसके मुताबिक बरतने का प्रयास करना।

गांधी और हिन्द स्वराज में गिरिराज किशोर ने मुख्य रूप से हिन्द स्वराज को भारतीयकरण के रूप में देखा है। गांधी जी ने पाश्चात्य विद्या का नकल न करके उसका भारतीयकरण किया है। इन्होंने यह भी दिखाया है कि संस्कृति किस प्रकार से आत्म जीवन की प्रकृति को प्रभावित करती है। खण्ड दो में हिन्द स्वराज की पाठ चर्चा है। इसमें हिन्द स्वराज को विभिन्न उद्धरणों से समझने की कोशिश की गई हैं।

(तिवारी, 2009) की पुस्तक 'हिन्द स्वराज' में यह दिखाया गया है कि हिन्दुस्तान नई दुनिया की नई बाईबिल की तरह नैतिक शक्ति का बहुत बड़ा ग्रंथ है। इन्होने लिखा है कि हिन्द स्वराज वह बीज है जिसने गांधी का विचार–वृक्ष धरती की छाती पर उगाया; तथा जर्मन इतिहासकार डिटमार रोदरमुन्ड की पुस्तक 'महात्मा गांधी'ः एशे इन पॉलिटिकल बायोग्राफी ने हिन्द स्वराज को समय बद्ध युद्ध नीति का दस्तावेज करार दिया है जो पश्चिमी सभ्यता को मात्र चुनौती नहीं देता बल्कि यह पुस्तक तो अराजक क्रांति में विश्वास रखने वाले भारतीयों को उत्तर देने के लिए लिखी गई थी। लेखक ने यह बताया कि हिंसा में विश्वास रखने बाले लोगों का परिवर्तन संभव है। लेखक ने ऐसे बुद्धिजीवियों की लम्बी सूची दी है जिससे गांधी प्रभावित थे और जिन्हें आधुनिकता की तुरही बजाने की प्रगति की डींग मारने वाले पश्चिमी सभ्यता पर गहरा संदेह रहा है क्योंकि वे साम्राज्यवाद की हिंसा के प्रति बेखबर थे। लेखक हिन्द स्वराज को उत्तर आधुनिक पुस्तक मानते हैं। हर एक उद्धरण में कई विद्वानों के द्वारा लेख ने हिन्द स्वराज को

प्रतिस्थापित करने की कोशिश की है। लेखक के अनुसार आधुनिक सभ्यता खुद विकल्पों के तलाश में रही है; नैतिक मूल्यों के स्खलित होने के कारण उसका पराभव हुआ है।

(शाह, 2009) की 'हिन्द स्वराज' एक अध्ययन (गांधी को पाने का एक प्रयास) नामक पुस्तक का अनुवाद दशरथलाल साह एवं सम्पादन अनुपम मिश्र ने किया है। यह अत्यंत गंभीर तथ्यपरक पुस्तक है। 'मील का पत्थर' शीर्षक के अन्तर्गत उन्होनें लिखा है कि 'हिन्द स्वराज' का गांधी समस्त मानव जाति का आत्मीय स्वजन तथा परमहित चिन्तक, सहृदय मित्र हैं। इसके पन्ने–पन्ने पर एक छटपटाहट है, व्यथा है, हृदय की वेदना है, व्याकुल हृदय का आंर्तनाद है, बेचैन आत्म की पुकार है। लेखक अपने आपको 'हिन्द स्वराज' का एक सामान्य सिपाही कहता है और इसे गांधी का 'मेनिफेस्टो', सर्वोदय का घोषणा–पत्र, सर्वनाशक भौतिकवादी विचारधारा के विरूद्ध एक बुलंद चुनौति मानता है। वे 'हिन्द स्वराज' को मनुष्य की क्रांति तथा उत्क्रांति की विकास यात्रा में एक मील का पत्थर के रूप में स्वीकार करते है। उन्होनें आगे लिखा है कि 'हिन्द स्वराज' परम्परागत लीक से मानवजाति को बाहर निकालकर उसे नयी राह पर ले जाने वाली पुस्तक है। उन्होंने लिखा कि रस्किन का 'अन टू दिस् लास्ट' सर्वोदय विचारधारा का गोमुख है और सर्वोदयआधुनिक विज्ञान युग के अनुरूप एक वैश्विक विचारधारा है। साथ–ही–साथ इसी विचारधारा से सही स्वराज प्राप्त किया जा सकता है। लेखक का मानना है कि जब हिंसा पर से मानव जाति का भरोसा टूट रहा है और लगता है कि हिंसा से प्रश्न सुलझने वाला नहीं है। परन्तु दूसरी तरफ अहिंसा पर पूरा भरोसा अभी जमा नहीं है। प्रेम के मार्ग से कोई काम कैसे होगा, वह अभी तक यह स्पष्टतया समझ में नहीं आया है। मात्र इतना ही ध्यान में आया है कि शस्त्रबल से, द्वेष से कोई काम होता नहीं है, किसी प्रश्न का स्थायी हल होता नहीं है। प्रेम के मार्ग से प्रश्न किस तरह सुलझ सकते हैं, वह सिद्ध करना तो अभी बाकी ही है। अब तक उसकी थोड़ी झलक मिली है। समाज के सामने आज के प्रश्न हम एक के बाद एक प्रयोग करके प्रेम और अहिंसा के मार्ग से सुलझाएं तभी मानव जाति का अहिंसा पर विश्वास बढेगा। लेखक अहिंसा को हिंसा की तरह ही ट्रायल करने के पक्ष में हैं।

(सलमी, 2009) ने पाया कि विश्व के अनेक भाग, यहाँ तक कि सामाजिक बौद्धिक समृद्धता का मुख्य स्थान स्कूल भी प्रायः, दुःख व पीड़ा के स्थल हैं। हिंसा व शिक्षा के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण प्रश्न उबरते हैं। शोधकर्ता ने प्रश्न उठाये कि (1) किस प्रकार की हिंसा का स्कूली स्थिति में मुकाबला किया जा सकता है? (2) ऐसी हिंसा कैसे विद्यमान हैं? (3) क्या ऐसी हिंसा सहसा उत्पन्न होती हैं या वे किन्हीं विशिष्ट कारकों व स्थिति से सम्बन्धित हैं? (4) उनको कम करने या न घटित हो सकने के लिये क्या किया जा सकता है? इन प्रश्नों के सन्दर्भ में शोधार्थी ने स्कूल प्रणाली में घटित हो सकने वाली विभिन्न प्रकार की हिंसा को विधिवत ढंग से

पहचाननेहेतु विश्लेषण का ढॉचा बनाने का प्रस्ताव किया है। यह भी दर्शाया गया है कि हिंसा के उक्त वर्गीकरण का किस प्रकार अनुप्रयोग किया जा सकता है। अन्त में शोधार्थी ने उन तरीकों को व्यक्त किया है जिनके माध्यम से स्कूलों के सन्दर्भ सहित अन्यत्र स्थानों से हिंसा से निपटने हेतु शिक्षा का सकारात्मक शक्ति के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। यह शोधपत्र दार्शनिक व गुणात्मक स्वभाव का है। शोधपत्र को निम्न भागों में विभाजित किया गया है: परिचय, हिंसा व शिक्षा– विश्लेषणात्मक एक रुपरेखा, शिक्षा प्रणाली में हिंसा की व्यापकता, शिक्षा एक सकारात्मक कारक, शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व तथा टकराव का समाधान, समान–अवसर की नीतियाँ, सुरक्षा व स्वास्थ मानकों का परिभाषी कारण तथा उनको लागू करना, पाठ्यचर्या व शिक्षण व्यवहार व पद्धति में सुधार तथा निष्कर्ष। शोधपत्र के साथ एक अपेनडिक्स भी लगी है जिसमें उन देशों के नाम दिये है जो कि स्कूलों में हिंसा घटित होने से बहुत प्रभावित हैं। साथ में इन देशों से सम्बन्धित आंकड़े भी दिये है जिससे कि शोधार्थी के कथन प्रमाणित हो सकें। शोधपत्र में संदर्भ सूची नहीं दी गयी है, जो कि किसी शोधपत्र के लिये आवश्यक होती है। शोधार्थी ने हिंसा के प्रकारों को मय आकड़ों से समर्थित कर बहुत अच्छे तरह से समझाया है जिससे विषय–वस्तु की स्थिति, समस्या व समाधान आदि को आसानी से समझा जा सकता है। शोधपत्र में तर्क संगतता तथा संगठन प्रशंसनीय होना पाया है। शोधपत्र शिक्षार्थी, शोधार्थी तथा समाज, सभी के लिये, फायदेमन्द है।

(अस्थाना, 2008) ने भारत में टेलीविजन पर धर्मनिरपेक्षता और धर्म के विषयों को लेकर राष्ट्र निर्माण में इनकी भूमिका का अध्ययन किया। इस शोध के द्वारा अनुशंसा की गई कि टेलीविजन पर धर्म व धर्मनिरपेक्षता विषय पर रचनात्मक व सकारात्मक चर्चायें प्रदशित करना चाहिये। शोधार्थी ने बताया है कि धर्म और धर्मनिरपेक्षता पर कहानी, नाटक, नायक और नायक की जिन्दगानी के द्वारा टेलीविजन प्रभावशाली हो सकता है। धर्म और धर्म निरपेक्षता गैर–पश्चिमी समाज में भी वर्तमान में बहुत गम्भीर व नाजुक हालात में है। इसलिये धर्म व धर्मनिरपेक्षता हेतु टेलीविजन का उपयोग एक सकारात्मक फल प्रदान करेगा। समाजशास्त्रियों ने धर्म विषय को उपेक्षित ही नहीं कर दिया है, बल्कि वो धर्म को आधुनिकता का बाधक मानने लगे हैं। पिछले कुछ वर्षों में, मुख्यतः 9/11, आतंक पर वैश्विक युद्ध, डरफर से सोमालिया तक हिंसा आदि घटनाओं ने यह धारणा उत्पन्न की है कि ऐसी घटनाओं के प्रति धर्म का उपयोग महत्वपूर्ण होगा। धर्म सम्बन्धी और धर्मनिरपेक्षता सम्बन्धी चचाओं का प्रकार व प्रसार आवश्यक हो गया है। कुल मिलाकर शोधार्थी ने वर्तमान तथा तत्सम्बन्धी भूत घटनाओं के पक्षों का अच्छा अध्ययन प्रस्तुत किया है। विषय सामग्री को अर्थपूर्ण व महत्वपूर्ण बनाने हेतु 19 व्याख्यात्मक टिप्पड़ी दी हैं और करीब 30 से अधिक सन्दर्भ ग्रन्थों का प्रयोग किया गया होना बताया है।

(आरवेक व नेसबिट, 2008) ने ब्रिटेन में स्थित सत्य साई एजूकेशन इन ह्यूमन वेल्यूज नामक प्रोग्राम को ब्रिटेन के स्कूलों में चलाये जाने के बारे में, इसके फायदे नुकसान, इसकी आलोचनाओं तथा इसके भविष्य को सरल भाषा में, तार्किक संगत रूप से, वस्तुनिष्ठा से, विद्वानों के आकलन को सम्मिलित करते हुए बहुत ही अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया है। उक्त प्रोग्राम के द्वारा मूल्यों को सिखाया जाता है। सिखाने के अंग हैः 1. सप्ताह का विषय, 2. शान्त बैठना, 3. कहानी कहना, 4. समूहगान, 5. सामूहिक कर्म। इसके माध्यम से मानव से सम्बन्धित पाँच पक्षों के मूल्य व्यवहारों की शिक्षा दी जाती हैः– 1. चेतना मस्तिष्क (पाँच इन्द्रियाँ) 2. शान्ति 3. सत्य 4. प्रेम, तथा 5. अहिंसा। इन सभी मूल्यों के अर्थ तथा सार्थकता को सारांश में, किन्तु बहुत पूर्णता व स्पष्टता के साथ, बताया गया है। आलोचकों ने इस शान्ति शिक्षा या शान्ति के लिये शिक्षा को साई के प्रति भक्ति उत्पन्न करने का कर्म कहा है। कुछ आलोचक यह भी कहते हैं कि इस शिक्षा से रचनात्मक विचारों के उत्पन्न नहीं होने की स्थिति बनती है। कुल मिलाकर यह शोधपत्र बहुत सुन्दर, प्रशंसनीय, मानव के हितार्थ, शिक्षकों के लिये प्रेरणास्त्रोत, तथा समाज के हित में है।

(मिश्रा, 2008) नेनिम्न बिन्दुओं के आधार पर आज नैतिक शिक्षा की आवश्यकता को बताया है– मन की शांति के लिये, चरित्र निर्माण के लिये, बौद्धिक शिक्षा, आर्थिक, अस्त–व्यस्त जीवन से छुटकारा पाने हेतु, किशोर एवं युवाओं के लिये, अनुशासित जीवन के लिये, राष्ट्रीय एकता एवं अन्तराष्ट्रीय सद्भाव के विकास के लिये।

(लाल, 2008) ने गांधी की सार्वभौमिक नीति तथा नारीवाद विषय पर शोध की है। शोधार्थी ने पाया कि (1) पश्चिमी परम्परा की भाँति गांधी की नीति सार्वभौमिक, पक्षपातहीन तथा विमोह सम्बन्धी है, (2) नारीवाद के संवेदना, अनुभव व पराश्रित केन्द्रित नैतिक निष्कर्षों से गांधी की नीति में मेल है, किन्तु दोनों में अन्तर भी है और इसको समझना महत्वपूर्ण है। शोधकर्ता ने यह दर्शाया है कि अन्य लोग से भिन्नता से स्नेह उत्पन्न होता है, किन्तु यह स्नेह तब ही महत्वपूर्ण है जब कि इसके द्वारा हम सभी के प्रति निस्वार्थ प्रेमरूपी नैतिकता के शिखर पर पहुँचे।

(सरकार, 2008) ने भारत में 20वीं शताब्दी में 'विकासात्मक राष्ट्रवाद' और 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' विषय पर शोध की है। यह पाया गया कि विकासात्मक राष्ट्रवाद में संस्कृति और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के तत्व होते हैं। इसलिये 'विकास' और 'संस्कृति' का सावधानीपूर्वक समझना आवश्यक हैं। जरूरत बताई गयी है इस बात की कि भारत में गरीबी के साथ–साथ ही विकासात्मक और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का अध्ययन उचित है। शोधार्थी ने अपने पत्र को अग्रवर्णित शीषर्कों के अन्तर्गत चचाओं में विभाजित कर रखा हैः– परिचय (हालांकि शीर्षक नहीं

दिया गया है), केस स्टडीज तथा तुलनात्मक विवरण व निष्कर्ष। शोधपत्र में सन्दर्भ सूची नहीं दी गई है। शोधपत्र के अन्त में 30 व्याख्यात्मक टिप्पड़ियॉ दी गयी हैं। शोधार्थी ने अपने निष्कर्ष के समर्थन हेतु नैरोजी व बंकिमचन्द्र, स्वदेशी व पश्च–स्वदेशी, गांधीवाद युग, तथा नेहरूवादी विकासवादिता व हिन्दु राष्ट्रीयता के विषयों को केस स्टडीज कहते हुए वर्णन किया है। शोधपत्र दार्शनिक व गुणात्मक प्रकार का है। शोधार्थी ने सरल, शिष्ट, परिचित तथा स्पष्ट शब्दावली के प्रयोग द्वारा साफ–सुथरी तथा छोटे–छोटे सारगर्भित वाक्यों वाली भाषा में शोधकार्य प्रस्तुत किया है। शोधकार्य भावी शोध के लिये सहायक है तथा विषय वृहद समाज के लिये उपयोगी है।

(रावत, 2007) ने 'महात्मा गांधी और हिन्द स्वराज' नामक पुस्तक का संकलन–सम्पादन किया है। इस पुस्तक में साहित्यकार, आलोचक, पत्रकार, इतिहासकार और गांधीवादी चिंतक एवं दार्शनिक के लेखों का संग्रह किया गया है। पुस्तक में राजीव बोरा के लेख में कहा गया है कि हिन्द स्वराज में तो उसी प्रकार की स्थितियाँ पैदा की गई है जिस प्रकार संग्रामभूमि के बीचों–बीच श्रीमदभगवदगीता का हुआ था। अवधेश कुमार 'हिन्द स्वराज' को वैसी कृति मानते जो सैद्धान्तिक तो है लेकिन उसे अंतिम वसीयत के माध्यम से फलीभूत करना चाहते थे। धर्मपाल यह उद्धृत करते हैं कि 1891 में गांधी के लिखित चार–पाँच आलेखों और द. अफ्रीका में लिखे प्रार्थना पत्रों से भी हिन्द स्वराज की झलक मिलती है। दरअसल गांधी 1895 से 1909 के बीच उपजे विचारों को हिन्द स्वराज के रूप में संशोधित कर प्रस्तुत करते हैं। डॉ. रामजी सिंह 'स्व' के परिवर्तन के बिना स्वराज को दिवास्वप्न मानते हैं। उनके अनुसार हिन्द स्वराज की बुनियाद आत्मसंयम में है। प्रभात जोशी गांधी के धर्म संबंधी विचार को विश्लेषित करते हैं। कुमार प्रशांत बुद्ध के बोध और गांधी के हिन्द स्वराज को एक रूप में देखते हैं। इसके अलावा भी कई आलेख संकलित है जिसका उपयोग शोधार्थी ने किया है।

(ईजर, 2006) ने भारतवर्ष के सम्बन्ध में इन्फार्मेशन टेक्नोलॉजी (आई.टी.) की उपयोगिता का अध्ययन किया है। शोधार्थी मानते हैं कि किसी भी टेक्नॉलॉजी के प्रति रूझान और क्षेत्र, जिसमें उस टेक्नोलॉजी का अनुप्रयोग किया जाना है, के निर्धारण में शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। निःसन्देह आई.टी. भी एक टेक्नोलॉजी है, और इसलिये आई.टी. के अनुप्रयोग किये जाने वाले क्षेत्र का निर्धारण और आई.टी. के प्रति रूझान शिक्षा से प्रभावित होते हैं। शोध द्वारा बताया गया है कि (1) भारतवर्ष के छात्रों का विश्वास है कि भारतवर्ष के विकास के लिये आई. टी. बहुत अधिक सकारात्मक रूप से प्रभावकारी है, (2) वे छात्र विदेश के पश्चिमी क्षेत्रों के देशों के साहित्य की भाँति आई.टी. पर सन्देह/संशय भाव नहीं रखते है; (3) वे छात्र आई.टी. को व्यक्तित्व विकास का एक उपकरण समझते है जिसके माध्यम से वे अपने को धनी बना सकते

है और देश–विदेश में सफल व्यक्ति बन सकते हैं, (4) भारतवर्ष का विकास कर एक वैश्विक शक्ति स्तर की प्राप्ति के लिये भारतवर्ष में आई.टी. को एक उपकरण समझा जाता है, तथा (5) (सबसे अधिक महत्वपूर्ण परिणाम) उपरोक्त भावों से भारतवर्ष में उच्च शिक्षा द्वारा गरीबी दूर करने में आई.सी.टी. का प्रयोग सार्थकरूप से व्यवधान है।

(एन.सी.डी.पी.आई., 2006) ने आसक्त संबंध, सामाजिक समर्थन, नैतिक व व्यवहार मार्गदर्शन, व्यक्तिगत विकास या परिवर्तन आदि के माध्यम से आध्यात्मिकता और धार्मिकता द्वारा व्यक्ति का उत्थान हो सकने का पाया है।

(किंगडन व नाइट, 2006) ने शोध में पाया कि एक अच्छे जीवन या बुरे जीवन के आधार पर मूल्य सम्बन्धी मूल्याकंन से गरीबी की समझ उत्पन्न होती है। शोधकर्ताओं का कहना है कि खुशहाली के बारे में किसी का एक विधि से स्वयं का अवलोकन, किसी अन्य विधि के अवलोकन की तुलना में कम त्रुटिपूर्ण हो सकता है, या अधिक मापनीय हो सकता है, या दोनों हो सकता है। अर्थात्, लाभ या उपभोग आधारित और 'मूलभूत आवश्यकतायें' व आन्तरिक मूल्यों के अनुसार कार्य करने की योग्यता आधारित, दोनो के आधार पर, गरीबी का अर्थ व्यक्त करना संकल्पनात्मक है, इनसे एक दूसरे की महत्ता व प्रासंगिकता तथा उनमे नीहित चरों का मूल्यांकन किया जा सकता है।

(चेटर, 2006) का यह शोध शिक्षा में तथा शिक्षा के प्रति हिंसा (स्कूलों में भौतिक हिंसा नहीं) की संकल्पना पर आधारित है। हिंसा का अर्थ है, स्कूलों में और शिक्षा प्रणाली से सम्बन्धित सांस्कृतिक, भावनात्मक तथा मनोवैज्ञानिक हिंसा। शोधार्थी तीन प्रश्न करते हैं–(1) क्या शिक्षा में हिंसा सन्निहित है? (2) यदि, है, तो यह समस्या कितनी गम्भीर है? तथा (3) इस समस्या के समाधान हेतु आध्यात्मिक शिक्षा को क्या करना चाहिये? व्याख्यान/ संवाद विश्लेषण विधि द्वारा शोधकर्ता ने पाया है कि अधिकतर शैक्षिक भाषायें परोक्षतः हिंसात्मक हैं। कारण हैं–(1) युद्ध तथा हैवी मेकेनिकल उधोगों से ली हुई शब्दावली तथा रूपक अलंकारों का प्रयोग शैक्षिक भाषाओं में होता है, तथा (2) इसमें शिक्षा/शैक्षिकभाषा में लिप्त लोगों की सांस्कृतिक स्थिति घमंडी/निरंकुश, नियन्त्रणकारी तथा आक्रामक होती है। अतः यह समस्या अत्यन्त गम्भीर है। और इस समस्या का समाधान सम्भव किया जाना सम्भव है उन आध्यात्मिकता प्रतिबद्ध लोगों तथा लोगों के उस वृहद समुदाय के प्रयासों से जो अपने देश में स्वस्थ, सुसंगत तथा समावेशी जनशिक्षा सेवा की निरन्तरता चाहते हैं। ऐसे बदलाव के लिये एक क्रान्ति की आवश्यकता है, और वो भी आरम्भिक स्तर से लागू करने की। शिक्षा व्यवस्था में लगे लोग इसके लिये शुरूआत

करने के लिये उन शब्दों, वाक्याशों, मुहावरों तथा संरचनाओं की एक सूची बना सकते हैं जिनका इस्तेमाल शिक्षा प्रक्रिया में नहीं हो।

(रामानाथन, 2006) ने गुजरात में घटित दो भीषण हानिकारक घटनाओं और उनसे उबरने हेतु स्थानीय लोगों द्वारा किये गये योगदान को महात्मा गांधी के असहयोग तथा सामाजिक–आर्थिक शिक्षा के सन्दर्भ में अध्ययन किया। उन्होने पाया कि परम्परागत शिक्षा पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है।

(वोजक, 2006) ने अनेक साहित्य के अध्ययन से यह ज्ञात किया कि धोखेबाजी का प्रचलन ही सिर्फ नहीं बढ़ा है, बल्कि यह सामाजिक तौर पर स्वीकृत भी हुई है। इसी बात को ध्यान में रखकर शोधार्थी ने तुलनात्मक अध्ययन किया है इन दो सामान्तर स्थितियों काः (1) बाजार मूल्य व धोखाबाजी तथा (2) विद्यार्थियों की धोखेबाजी की प्रवृत्ति। शोधकर्ता ने पाया कि यदि प्रवृत्त अवाँछित धोखेबाजी के बाजार व्यवहार/ प्रवृत्ति को कम कर दिया जाता है तो विद्याथियों में धोखेबाजी की प्रवृत्ति बहुत अधिक हद तक कम की जा सकती है।

(हिन्चलिफी, 2006) ने प्लेटो के 'सिम्पोसियम', 'फेडरस' और 'रिपब्लिक' का अध्ययन कर प्रेम (लव), अधिगम (लर्निंग) और ज्ञान (नॉलेज) के मध्य सम्बन्ध खोजने का प्रयत्न शोधार्थी द्वारा किया गया है।'सिम्पोसियम' के अनुसार दैहिक इच्छा का उच्च स्तर, सौन्दर्य प्रेम है। प्रेम की वंशावली के अनुसार, इस स्थिति में प्रेम का उद्देश्य ज्ञान के उद्देश्य में परिवर्तित होता है। 'फेडरस' बताता है कि किस प्रकार स्नेह व प्रेम दो व्यक्तियों के मध्य अधिगम के लिये प्रेरणा का काम करता है। 'रिपब्लिक' द्वारा ज्ञान का मूल्य प्रकट होता है– ज्ञान और मत (ग्रहित विश्वास) में अन्तर करने पर। इस प्रकार, अधिगम के प्रति प्रेम तब उत्पन्न होता है जब वस्तु/स्थिति प्रेम के योग्य हो। इस प्रकार प्लेटो के माध्यम से ज्ञान मिलता है कि (1) सीखने/ अधिगम में भावात्मक गुण हो सकता है और होना ही चाहिये, तथा (2) सीखना/अधिगम वह है जो ज्ञान प्रदान करे और अन्तदृष्टि प्रदान करे।

(हार्ट, 2006) ने वर्णनात्मक व गुणात्मक साक्ष्यों के आधार पर आध्यात्मिकता में अनेक फायदों का होना पाया और आध्यात्मिक शिक्षा को आवश्यक मानते हुए उसमें सुधार हेतु सुझाव दिये है।

(टकर व स्ट्राँग, 2005) ने शिक्षा के गिरते स्तर के कारणों का जिक्र करते हुए तथा सरकारी व गैर–सरकारी संस्थानों द्वारा किये जा रहे कार्यों को ध्यान में रखते हुए, यह सुझाना है कि ऐसी

स्थिति में शिक्षा प्रणाली में सुधार लाने हेतु क्या करना चाहिये। इस पुस्तक में सात अध्याय तथा छः अपेन्डिक्स हैं; बिबलियोग्राफी के अतिरिक्त। प्रथम दो अध्यायों में यह बताया है कि शिक्षक,जो कि बहुत शक्तिमान है, का मूल्यांकन क्यों आवश्यक है और यह मूल्यांकन कैसे किया जाना चाहिये। लेखकों ने व्यक्त किया है कि शिक्षा का अन्तिम फल है, बच्चों को उत्तम व्यवहारशील, निपुण, कारगर, अच्छा नागरिक बनाना। ऐसा करने का अर्थ है कि शिक्षा के दरमयान उनकी उच्च उपलब्धि हो। यदि विद्यार्थियों की उच्च उपलब्धि है, तो यह परिणाम शिक्षक की उच्च उपलब्धि के कारण है। इसलिये शिक्षकों की उपलब्धि को सुधार दें तो शिक्षा के उद्देश्य की पूर्ति स्वमेव हो जायेगी। लेखक ने उदाहरण बतौर शिक्षकों के मूल्यांकन करने के चार तरीकों का वर्णन अध्याय–3 से अध्याय–6 तक में किया है। अन्त में लेखक ने मुख्य बातों को सारांश में लिखा है, तथा अपनी संस्तुतियाँ दी हैं।

(शर्मा, 2005) द्वारा रचित 'हिन्द स्वराज की प्रासांगिकता' के दूसरे भाग में हिन्द स्वराज की प्रासांगिकता है। हिन्दुस्तान क्यों हारा? अंग्रेजी राज में हिन्दुस्तान की दशा, आधुनिक सभ्यता की तकनीक, राष्ट्र की अवधारणा, ऐलोपेथिक चिकित्सा की अपूर्णता, क्रूरता एवं विनाशकारी प्रभाव का विश्लेषण सटीक ढंग से किया गया है। भाग दो में हिन्द स्वराज की प्रासांगिकता के अन्तर्गत लेखक ने यह बताने की कोशिश की है कि गांधी सनातन धर्म की संस्कृत आधारित शास्त्रीय परंपरा के न तो समर्थक थे और न विरोधी। दरअसल वे लोक कला, धर्म, तकनीक, हुनर के समर्थक थे। लेखक ने पूर्व मीमांसा, सांख्य, वैशेषिक, न्याय, योग, उत्तर मीमांसा, वैदिक, बौद्ध, व जैन विचारों की प्रमाणिकता को व्यक्त किया है। चार आश्रम और सोलह संस्कार, चार पुरूषार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष), प्रकृति एवं संस्कृति, नौ प्रकार के भाव एवं रस के आधार पर भारतीय सभ्यता के तार्किक आग्रह को स्वीकार किया है। इन्होंने यह दिखाने की कोशिश की है कि हर संस्कृति की कुछ समस्याएं होती है। लेखक मानते हैं कि गुलामी के लम्बे दौर में भारतीय संस्कृति को आम आदमी ने बचाये रखा। लेकिन रीति–रिवाज और कानून को अप्रासांगिक बना दिया। लेखक ने स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द और गांधी के विचारों के साथ ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, राजाराम मोहन राय को भी तुलनात्मक रूप से विश्लेषित किया है।

(जोशी, 2003) ने पाया कि गांधी के जीवनकाल और विश्व में आजकल की आर्थिक राजनीतिक व्यवस्थाओं व स्थिति में बहुत अधिक परिवर्तन हो गया है। इसलिये गांधी की राजनीति को लोग भले ही असामयिक कहें किन्तु गांधी द्वारा नैतिकता के सम्बन्ध में व्यक्त विचारों की जरूरत वर्तमान में और भी अधिक प्रासंगिक हो गयी है। इसलिये इस पुस्तक की रचना हुई है। इस पुस्तक 'गांधीजी और इन्वायरमेन्ट' हेतु भारत सरकार के पर्यटन व संस्कृति मन्त्रालय ने आर्थिक

सहयोग उपलब्ध कराया है। इस पुस्तक की विषय–सामग्री को विदुषी दिव्या जोशी ने संकलनकर व प्रस्तुति की है। इस पुस्तक में 85 पृष्ठ हैं। इस पुस्तक हेतु सन्दर्भ ग्रन्थों के रूप में भारत सरकार के प्रकाशन विभाग द्वारा वर्ष 1958 से वर्ष 1985 द्वारा प्रकाशित वार्षिकी पुस्तक 'कम्पलीट वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी' {सी.डब्लू.एम.जी.} का प्रयोग किया गया है। इस पुस्तक की विषय सामग्री को अध्यायों में विभाजित कर प्रस्तुत नहीं किया गया है, किन्तु विषय–वस्तु को पाठकों व जनसाधारण को विश्वव्यापी वर्तमान पर्यावरण समस्याओं व गांधी के विचारानुसार उनका समाधान बताने हेतु इस पुस्तक की विषय–वस्तु को विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया गया है; यथा– आधुनिक सभ्यता, जात मेहनत (शारीरिक श्रम), प्राकृतिक पाँच अवयव, प्राकृतिक चिकित्सा व सम्पूर्ण चिकित्सा, शाकाहारीवाद, स्वच्छता तथा स्वास्थ विज्ञान, जानवरों के प्रति निर्दयता आदि। इस पुस्तक की उपयोगिता वर्तमान की पर्यावरण समस्याओं को समझने व उनका हल गांधी के विचारों से समझाने में है। यह पुस्तक प्रशंसनीय है।

(पारेख, 2001) की पुस्तक 'गांधी' के प्रथम अध्याय 'लाइफ एण्ड वर्क' के अन्तर्गत जीवन की विभिन्न घटनाओं की चर्चा की गई है। उन्होनें लिखा है कि 21 वर्ष की आयु में गांधी के विचार और जीवन में महत्वपूर्ण बदलाव आया। गांधी अनिश्चितता और असफल वकील के रूप में द. अफ्रीका गये थे। वहां से लौटते समय वे गहन धार्मिक, आत्मविश्वासी और गर्वित राजनीति विचार के रूप में भारत आये। इसी अध्याय में चम्पारण और खेड़ा सत्याग्रह का वर्णन किया गया है। द्वितीय अध्याय में वे लिखते हैं कि गांधी हिन्दू, जैन और ईसाई धर्म से काफी प्रभावित थे और उन्हें भगवान में अटूट आस्था थी। तृतीय अध्याय में मानव व्यवहार 'ह्यूमन नेचर' के अन्तर्गत मनुष्य के आचरण को ईश्वर और धर्म के ईर्द–गिर्द रखते है। वे नैतिक सिद्धान्त को मानव व्यवहार का आधार मानते हैं। चतुर्थ अध्याय में सत्याग्रह की विस्तृत चर्चा की गई है। इसमें आत्मबल, सत्याग्रह की सीमा इत्यादि का वर्णन किया गया है। गांधी ने आधुनिकता की आलोचना की और समाज को अहिंसा दृष्टि अपनाने की वकालत की।

(गांधी, 1962). गांधी नें 'माई गॉड' शीर्षक की कोई विशिष्ट पुस्तक नहीं लिखी थी। यह पुस्तक एक संकलन है। इस पुस्तक के लेखक का नाम एम. के. गांधी इसलिये लिखा गया है क्योंकि इस संकलन में सिर्फ गांधी के विचारों का ही उल्लेख है। हाँ, इस संकलन में नीहित गांधी के विचारों का प्रवाह क्रम अवश्य ही उसी श्रंखला/ क्रम में नहीं है जिसमें गांधी ने अपने विचार प्रकट किये थे। संकलनकर्ता, जिसका नाम पुस्तक में नहीं दिया गया है, ने वाकई गांधी के अनुसार 'उनका ईश्वर' जैसे वृहद व क्लिष्ट विषय को संजोने, संवारने, क्रम में व्यस्थित करने तथा उनको शीषर्कों के अन्तर्गत प्रस्तुत करने का अद्वितीय कार्य किया है। यह कार्य अति प्रशंसनीय है। इस पुस्तक में 18 अध्याय हैं। ये सभी 18 अध्याय छोटे–छोटे से हैं। इन अध्यायों

के शीर्षक के नाम के अनुसार विवेकपूर्ण ढंग से गांधी के विचारों का समावेश किया गया है। अध्याय या गांधी के ईश्वर के प्रति व्यक्त विशिष्ट पक्षों के नाम हैंः– ईश्वर का अर्थ, ईश्वर की वास्तविकता, ईश्वर का स्वभाव, सत्य ईश्वर है, ईश्वर की अदृश्य अहिंसा नामक शक्ति, विश्वास और तर्क, ईश्वर की अनुभूति, ईश्वर हेतु प्रार्थना, ईश्वर की भाषा, ईश्वर के नियम, ईश्वर व दुष्ट, ईश्वर दर्शन, ईश्वर तक पहुँच मार्ग, ईश्वर की सेवा, सच्चा भक्त, ईश्वर गृह, ईश्वर का अवतार तथा मेरे लिये ईश्वर का अर्थ। यह पुस्तक वास्तव में बहुत अनूठी है।

(गांधी, 1955). विश्व में धर्म नाम पर लगातार तकरार, और कभी हत्यायें वगैरह हिंसायें, ने संकलनकर्ता के इस कार्य को अंजाम दिया। यह पुस्तक लेखक 'गांधी' के नाम से है अवश्य, किन्तु यह पुस्तक वस्तुतः सिर्फ गांधी के लिखित भाषाणों, वार्ताओं और लिखित कृतियों को दर्शाती है और इसीलिये संकलित पुस्तक का लेखक गांधी को ही कहा गया है। इस पुस्तक में 193 पृष्ठ हैं। बहुत प्रशंसनीय रूप से धर्म सम्बन्धी गांधी के विचारों को इस छोटी सी पुस्तक में आठ भागों (सेक्सन) में विभाजित किया गया है। ये आठ भागों के शीर्षक हैंः– धर्म से मेरा आशय, सर्वधर्म समभाव, ईश्वर पर मेरा विश्वास, धर्म अनुपालना में मेरे व्यवहार, धर्म–प्रवर्तनीयता में मेरे सहायक, मेरे धर्म के उद्देश्य तथा मेरा हिन्दुत्व। वास्तव में, यह छोटी सी पुस्तक एक वृहद ग्रन्थ है। गांधी के बिखरे हुए विचारों को सलीके से, सरलता से तथा स्पष्टता से व्यक्त किया गया है। इस पुस्तक के लिखने के कार्य को जितना भी सराहनीय कहा जाये, कम है। यह पुस्तक विश्व मेंव्याप्त सभी लोगों द्वारा सिर्फ पढ़ी ही नहीं जानी चाहिये बल्कि उन्हें इस पुस्तक में नीहित विचारों को कार्यरूप तथा व्यवहाररूप में नियमित अनुपालना करना चाहिये और उनका अभ्यास करना चाहिये। स्वर्ग, मोक्ष, सब कुछ प्राप्त करने का साधन है यह छोटी सी पुस्तक।

(कुमारप्पा, 1951) गांधी के विश्वसनीय चेले थे। गांधी लेखक से प्रायः उनके आर्थिक विचारों को कार्यरूप में परिणित करने कार्य लेखक को देते थे। इस पुस्तक की भाषा व शैली, सरल, संक्षिप्त, सुगठित व स्पष्ट है। उदाहरणों की प्रचुरता से युक्त यह पुस्तक सामान्य व्यक्ति के भी समझ में आनेवाली तो है ही, साथ ही पाठकों को गांधीयन अर्थशास्त्र के अनुरूप जीवनचर्या अपनाने की प्रेरणादायक भी है। यही इस पुस्तक का उद्देश्य है। इस पुस्तक में बिबलियोग्राफी के अतिरिक्त छः अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में गांधीयन अर्थतन्त्र के सामान्य आधारों का वर्णन है। इस अध्याय में तथा अन्य अध्यायों में गांधी के सत्य और अहिंसा के विचारों पर आधारित वर्णन है। गांधी ने अलग से अर्थशास्त्रग्रन्थ की रचना नहीं की थी; वस्तुतः सत्य व अहिंसा आधारित जीने की राह में ही गांधी का अर्थशास्त्र छुपा है। लेखक ने बताया है कि गांधी के आर्थिक विचारों या अर्थशास्त्र को 'माता–अर्थशास्त्र' या 'सेवा–अर्थशास्त्र' कहा जा सकता है।

द्वितीय अध्याय में खाधान्न अर्थशास्त्र तथा ग्रामीण पुनर्उत्थान वर्णित है। तीसरे अध्याय में खाधान्न तथा ग्रामीण उधोग की विशेषताओं, उसकी आवश्यकता, उसके फायदों तथा उसके विकास के तरीकों का वर्णन है। चतुर्थ अध्याय में गांधी के विचारों पर आधारित औधोगिक अर्थशास्त्र, पॉचवे अध्याय में समाजवाद तथा कम्यूनिज्म की तुलना गांधी के अर्थिक तन्त्र से की गयी है, तथा अन्तिम छठे अध्याय में पुस्तक का निष्कर्ष लिखा गया है। यह कहा गया है कि हमारे अर्थतन्त्र में व्यक्ति काव्यक्तितः विकास दूसरों का शोषण करके नहीं ब्लकि गांधी के विचारों के अनुरूप जीवनचर्या अपनाकर करना चाहिये ताकि एक ऐसी मानवता की सभ्यता विकसित हो जिसमें इन्सान का इन्सान से प्यार नीहित हो तथा कोई झगड़ा–फसाद न हो। यह पुस्तक अति उत्तम कृति है।

(प्रभू, 1947) का यह संकलन 'इण्डिया ऑफ माई ड्रीम्स' के रचयिता के रूप में एम. के. गांधी (महात्मा गांधी) का नाम है और वो इसलिये है क्योंकि इस पुस्तक में गांधी के विचारों का ही वर्णन है। यह पुस्तक गांधी के विचारों का संकलन है। संकलन हेतु, वैसे तो सन्दर्भग्रन्थ सूची में 20 स्त्रोत लिखे हैं, मुख्यतः 'यंग इण्डिया' और 'हरिजन' तथा गांधी के लिखित भाषणों का उपयोग किया गया है। इस पुस्तक द्वारा संकलनकर्ता ने प्रशंसनीयरूप से गांधी के बहुत वृहद विचारों के सागर को एक छोटेरूप में प्रस्तुत किया है। इस पुस्तक में 271 पृष्ठ हैं। पुस्तक के अन्त में प्रमुख शब्दों के अर्थ की सूची दी है। अंत में सन्दर्भ ग्रन्थ सूची दी है। पुस्तक का विमोचन भारत की आजादी के दिन, यानी 15 अगस्त 1947, को किया गया था। प्रकाशन के सन्दर्भ में भारत के प्रथम राष्ट्रपति स्व. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने प्राक्कथन किया था। इस पुस्तक में 75 अध्याय हैं। पुस्तक द्वारा पाठकों को गांधी के मात्र मौलिक व प्राथमिक विचारों का ही ज्ञान नहीं होता है, बल्कि यह भी ज्ञान होता है कि हम गांधी के विचारों को कार्यरूप में कैसे परिणित करें और इस वास्ते हमें कैसी राजनीतिक व्यवस्था तथा सामाजिक जीवन बनाना चाहिये। प्रस्तुत अध्यायों में नीहित विषय–वस्तु तथा उनके संगठन द्वारा संकलनकर्ता ने विषय–वस्तु को इस रूप में प्रस्तुत किया है कि प्रतीत होता है कि गांधी अपने स्वयं की दृष्टि से भारत को कैसा बनाने और किस प्रकार बनाने का सजीव व संक्षिप्त वर्णन कर रहे हैं। निःसंदेह यह पुस्तक सराहनीय है और भारत को महान बनाने के लिये बच्चों व बड़ों, सरकारों व संगठनों के लिये बहुत उपयोगी है।